 ੴ सतिगुर प्रसादि ॥ 

गुर गिआन अंजन सचु नेत्री पाइआ ॥
अंतरि चानणु अगिआनु अंधेरु गवाइआ ॥

मासिक

गुरमति ज्ञान

ज्येष्ठ-आषाढ़, संवत् नानकशाही ५४४
वर्ष ५ अंक १० जून 2012

संपादक : सिमरजीत सिंघ *एम. ए., एम. एम. सी.*
सहायक संपादक : जगजीत सिंघ *एम. एम. सी.*

चंदा

सालाना (देश)	१० रुपये
आजीवन (देश)	१०० रुपये
सालाना (विदेश)	२५० रुपये
प्रति कापी	३ रुपये

चंदा भेजने का पता
सचिव, धर्म प्रचार कमेटी
(शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी)
श्री अमृतसर-१४३००६
फोन: 0183-2553956-60, फैक्स: 0183-2553919



एक्सटेंशन नंबर
वितरण विभाग **303** संपादकीय विभाग **304**
e-mail : gyan_gurmat@yahoo.com
website : www.sgpc.net

विषय-सूची

गुरबाणी विचार

किआ जपु किआ तपु किआ ब्रत पूजा ॥
जा कै रिदै भाउ है दूजा ॥१॥
रे जन मनु माधउ सिउ लाईऐ ॥ चतुराई न चतुरभुजु पाईऐ ॥रहाउ॥
परहरु लोभु अरु लोकाचारु ॥ परहरु कामु क्रोधु अहंकारु ॥२॥
करम करत बधे अहंमेव ॥ मिलि पाथर की करही सेव ॥
कहु कबीर भगति करि पाइआ ॥ भोले भाइ मिले रघुराइआ ॥४॥ *(पन्ना ३२४)*

भक्त कबीर जी गउड़ी राग में उच्चारण किए गए उपरोक्त शबद में मनुष्य को परमात्मा की भक्ति सच्चे मन से एवं ढोंगरहित ढंग से करने की प्रेरणा देते हुए फरमान करते हैं कि जिस मनुष्य के हृदय में परमात्मा के बिना किसी अन्य का प्यार है अर्थात् जिस मनुष्य की श्रद्धा परमात्मा के सिवा किसी अन्य (ढोंगी) में टिकी है, उसका जप करने का कोई लाभ नहीं, उसके तप का कोई अर्थ नहीं; उसके द्वारा रखे गए व्रत एवं की गई पूजा आदि सब व्यर्थ हैं। भक्त कबीर जी मनुष्य द्वारा परमात्मा में बिना श्रद्धा रखे किए गए जप, तप, व्रत, पूजा आदि का खंडन करते हुए समझाते हैं कि हे जन! मन को परमात्मा के साथ जोड़। यदि तेरा मन ही स्थिर नहीं, परमात्मा में जुड़ा नहीं तो तेरी ऐसी भक्ति का कोई लाभ नहीं। यदि कोई मनुष्य ऐसी भक्ति करता है तो उसकी इन चतुराइयों, सियानपों का कोई लाभ नहीं; ऐसी चतुराइयों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती।

भक्त कबीर जी का मनुष्य-मात्र के लिए इससे आगे उपदेश है कि मनुष्य को हर तरह का लोभ एवं लोकाचार का त्याग कर देना चाहिए; मनुष्य को काम, क्रोध, अहंकार आदि का दामन नहीं थामना चाहिए, क्योंकि ये सब प्रभु-भक्ति में बाधा हैं। कई मनुष्य धार्मिक रस्में करते हुए अहंकार में ग्रस्त हो जाते हैं और कई परमात्मा को खुश करने के लिए पत्थरों की पूजा तक ही सीमित होकर जाते गए हैं, जबकि ये सब कर्मकांड परमात्मा को पाने के मार्ग में बिखरे कांटे हैं। मनुष्य को इनसे बच कर रहना होगा। भक्त कबीर जी शबद की अंतिम पंक्तियों में कह रहे हैं कि परमात्मा को मात्र भक्ति द्वारा ही पाया जा सकता है; बिलकुल साधारण मानव बनकर, भोला बन कर ही उसकी खुशियां पाई जा सकती हैं। कई चतुर लोग दिखावे आदि के लिए तो प्रभु-भक्ति का स्वांग रच लेते हैं जबकि उनका मन प्रभु को छोड़ किसी अन्य की श्रद्धा में भटक रहा होता है तथा उनके मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आसन जमाए बैठे होते हैं। ऐसे लोग दिशाहीन कहे जाते हैं; वे पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और भ्रमपूर्ण जीवन जी रहे होते हैं।





फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि

आज़ादी प्रत्येक प्राणी का जन्म-सिद्ध अधिकार है, मगर यह भी अटल सच्चाई है कि ताकतवर हमेशा कमज़ोर को ही अपना गुलाम बनाता आया है। आज़ादी शूरवीरों के लिए हमेशा संघर्ष का कारण बनी। इस संघर्ष हेतु अनेकों ही आज़ादी के परवाने कुर्बान हुए। हिंदोस्तान, जो कभी सोने की चिड़िआ कहलवाने वाला खुशहाल देश था, अपनी गलत नीतियों के कारण कई शताब्दियों की गुलामी की दलदल में जा धंसा। मुट्ठी भर लुटेरे विदेशों से आते और लाखों की संख्या में बसते हिंदोस्तानियों की लूट-मार करके अपने देश चले जाते; साथ ले जाते हज़ारों की संख्या में गुलाम बनाए हिंदोस्तानी। उन्हें मंडियों में ले जाकर बेचते। गुलाम का जीवन उम्र भर दो रोटियों के बदले अपने मालिक की सेवा करते हुए गुज़र जाता।

सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरु नानक देव जी ने हिंदोस्तानियों द्वारा हज़ारों वर्षों से झेली जा रही गुलामी की हालत पर गहरा अध्ययन किया। उन्होंने अनुमान लगा लिया था कि हिंदोस्तानियों की गुलामी का सबसे बड़ा कारण जाति-विभाजन एवं छुआ-छूत है। हिंदू धर्म चार वर्गों में बंटा हुआ था-- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। ब्राह्मण अपने आप को सर्वश्रेष्ठ समझता था और अन्य लोगों से सेवा करवाना वो अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता था। क्षत्रिय का काम युद्ध करना था। वैश्य का काम व्यापार आदि काम करने तथा शूद्र का काम (तथाकथित) उच्च वर्गों की हर तरह से सेवा करना था। इसी का परिणाम था कि जब हिंदोस्तान को लूटने के लिए बाहरी हमलावर आते तो समाज का एक ही वर्ग 'क्षत्रिय' ही उनका मुकाबला करता, शेष तीन वर्ग अपने-अपने काम में मस्त रहते। हमलावर आसानी से समाज के एक वर्ग पर विजय प्राप्त कर लेते और इस तरह वे चारों वर्गों की लूटमार करके उन्हें अपना गुलाम बना लेते।

छुआ-छूत का इतना बोलबाला था कि यदि कोई शूद्र किसी के साथ स्पर्श कर जाता तो उसे मृत्यु के घाट उतार दिया जाता। स्वर्ण जाति में से यदि कोई शूद्र के साथ स्पर्श कर जाता तो उसे बरादरी में से बहिष्कृत कर दिया जाता। इन्होंने जंग के मैदान में दुश्मन का मुकाबला मिल कर क्या करना था, बल्कि ये लोग एक दूसरे के साथ स्पर्श कर जाने से बचने का ही उपाय करते रहते।

प्रथम पातशाह श्री गुरु नानक देव जी ने सबसे पहले सिक्खों को जात-पात एवं छुआ-छूत के बंधनों से आज़ाद होने की प्रेरणा की। इस कार्य के लिए गुरु जी ने सांझे लंगर का निर्माण करवाया। गुरु जी की क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण मुगल राज्य के संस्थापक ज़हीर-उ-दीन बाबर ने उन्हें कैद कर लिया। गुरु जी की ठोस दलीलों के आगे जब उसकी एक न चली तो उसने गुरु जी की अज़मत के आगे सिर झुका दिया। बाबर के पुत्र हुमायूं ने भी अपनी राज्य-सत्ता के अहंकार में श्री गुरु अंगद देव जी पर तलवार उठाने की घटिया हरकत की थी। पंचम पातशाह श्री गुरु अरजन देव जी ने लोगों को जागृत करने के लिए सर्वसांझी गुरबाणी की संपादना की। यह प्रत्येक को नाम-सिमरन की आज़ादी देने हेतु महान कार्य था। श्री गुरु नानक देव जी की विचारधारा पर पहरा देते हुए सांझे सरोवर तैयार करवाये। श्री अमृतसर में चारें वर्गों के लिए सांझा श्री हरिमंदर साहिब तैयार करवाया। हाकिम जमात

को यह कब बर्दाश्त था? अत: गुरु जी को गर्म तवी पर बैठ कर, शीश में गर्म रेत डलवाकर, अनगिनत यातनाएं सहन करते हुए शहादत प्राप्त करनी पड़ी। छठे पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब ने ज़ालिम राज्य के विरुद्ध कई युद्ध करके सिक्खों को शूरवीरता का गुण धारण करने की प्रेरणा की। औरंगज़ेब के समय तक यह जुल्म इस हद तक बढ़ गया था कि गैर-मुसलमानों का जीवन भी नरक बन गया। इसी दौरान हिंद की चादर नवम पातशाह श्री गुरु तेग बहादर साहिब ने धर्म की आज़ादी के लिए दिल्ली के चांदनी चौक में शहादत प्राप्त की।

आज़ाद शक्ति को उभारने के लिए गुरु साहिबान ने क्रमबद्ध दस जामे धारण किए। दसवें पातशाह श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने जहां समाज में अपनी आज़ाद हस्ती दर्शाने के लिए जोश भर दिया, वहीं इसके साथ ही राज्य कर रहे विदेशी हाकिमों ने देशवासियों को गुलाम बनाए रखने के लिए जुल्म की अति कर दी। अन्याय के विरुद्ध संघर्ष को कुचलने के लिए अन्यायकारी तत्वों ने हर हथकंडा अपनाया। कुछ स्वार्थी एवं मौकाप्रस्तों ने भी अन्यायकारियों का साथ दिया।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने अपने हाथों सजाए खालसा पंथ को बाबा बंदा सिंघ बहादर की जत्थेदारी तले ज़ालिम हाकिमों को सबक सिखाने तथा आम जनता को आज़ादी का आनंद देने के लिए भेजा। बाबा बंदा सिंघ बहादर की जत्थेदारी तले देश के एक क्षेत्र में लोक-कल्याणकारी खालसा राज्य का परचम लहरा गया। जब्र-जुल्म करने वाले सरहिंद के सूबेदार वज़ीर खां तथा अन्य सूबेदारों को खत्म करके उन्हें उनके किए की सज़ा दी गई। देशवासियों को पहली बार अपनी आज़ाद हस्ती की अहमियत का पता चला। हलवाह जमीनों के मालिक खुद हो गए। श्री गुरु नानक देव जी तथा श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के नाम का सिक्का चला। आज़ादी के इस आनंद ने देशवासियों में एक नई ज्वाला भड़का दी। चाहे यह प्रारंभिक स्वतंत्र सिक्ख राज्य कुछ समय ही अपना अस्तित्व कायम रख सका, लेकिन इसने लोगों में हर हाल में आज़ाद होने की ललक पैदा कर दी। इस संघर्ष की बुनियाद रखी जा चुकी थी, जो अठारहवीं सदी के दूसरे मध्य तक सिक्ख मिसलों के रूप में उभरा। उन्नीसवीं सदी के पहले मध्य तक महाराजा रणजीत सिंघ का स्वतंत्र राज्य हो उभरा।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने जिस बहादुरी से अपनी शहादत दी उसे देखकर ज़ालिमों का भी कलेजा कांप गया। सदियों की गुलामी के बाद गुरु साहिबान की प्रेरणा सदका लोगों को आज़ादी के आनंद का एहसास करवाने वाला यह अमर शहीद सदा ही पंजाबियों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहेगा।

आज हमें अपने गुरु साहिबान तथा शहीदों, शूरवीरों के कारनामों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। अनजाने में कहीं हम अपनी एकता के प्रतीक व ज्ञान के स्रोत गुरुद्वारा साहिबान को भी वर्ग-विभाजन में तो नहीं बांट रहे? अनजाने में हमने अपनी सिक्खी लहर में ही कहीं सीमाएं तो नहीं खींच लीं? हमें जागृत होने की आवश्यकता है कि कहीं हम किसी मृग-तृष्णा के बहकावे में आकर फिर से उसी दलदल में तो नहीं धंस रहे, जिसमें से गुरु साहिबान ने हमें निकाला था।

आज फिर से हम अपनी सुविधाओं के मद्देनज़र कई तरह की गुलामियों की तरफ बढ़ रहे हैं। पदार्थवादी दौड़ में दौड़ते हुए, गुरु साहिबान की शिक्षाओं को आंखों से ओझल करते हुए हम गुलामी की जंजीरों में जान बूझ कर जकड़े जा रहे हैं। यह अति चिंता का विषय है। वाहिगुरु कृपा करें कि हम शेख फरीद जी द्वारा दी गई शिक्षा पर डट कर पहरा देते हुए, अपने अस्तित्व व शख़्सियत को कायम रखते हुए, महंगे मोल में प्राप्त की आज़ादी का आनंद उठा सकें :

फरीदा बारि पराइऐ बैसणा सांई मुझै न देहि ॥
जे तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि ॥



श्री गुरु अरजन देव जी का जीवन-सिद्धांत

-डॉ. कुलदीप सिंघ हउरा*

श्री गुरु अरजन देव जी अनुभवी, कलावान, पवित्रता के स्रोत, उच्च साहित्यक प्रतिभा वाले लेखक, महान निर्माणकर्ता, लासानी योजनाकार, गंभीर चिंतक, संत, कलाकार, संगीत-प्रेमी, महाकवि, कोमल कलाओं के समर्थक, भाषा-विज्ञानी, महान संपादक, अति नम्रता वाले व्यक्ति एवं बहुपक्षीय विद्वता के मालिक हुए हैं। उनके सम्पर्क में आए व्यक्ति न केवल आत्मिक रूप से ही अमीर हो जाते बल्कि गुरु साहिब की शख़्सियत की अमिट छाप भी उनके मन पर सदा के लिए रह जाती। लोग उनको प्यार करते तथा उनका विशेष रूप से आदर-सम्मान करते। वे सिक्ख परंपरा के पंचम गुरु होने के अलावा पावन आत्मा वाले ब्रह्मज्ञानी भी हुए हैं, जिनकी कृपा-दृष्टि पाने के लिए लोग सदा उन्हें निहारते रहते। उनकी प्यार भरी दृष्टि जीवन से टूटे हुए मनुष्यों को ज़िंदगी का राजा बना देती। दिलों को मोह लेने वाली नूरानी शख़्सियत उन्हें विरासत में मिली। उनके चारों ओर कण-कण में प्यार, सौहार्द तथा सहानुभूति का पासार था, जिससे सरशार होकर लोग सदा आनंद की मस्ती में आनंदित रहते। गुरु जी अकाल पुरख के साथ जुड़े हुए सब हृदयों में उसी (प्रभु) का ही निवास मानते। सारा संसार उनके लिए अकाल पुरख का जहूर ही था। वे अकाल पुरख के अस्तित्व एवं उसकी आभा से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें कोई वैरी या बेगाना न लगता। वे जो कुछ कादर की कुदरत में से अनुभव करते, उसी का बयान अपनी बाणी में करते। उन्हें प्रकृति की हर वस्तु में से अकाल पुरख का जलवा नज़र आता।

गुरु साहिब की बाणी का अध्ययन करने से पता चलता है कि बाणी उनके अंत:करण में से चश्मे की भांति फूटती है। उनकी सोच साफ़ एवं कहने का ढंग बड़ा प्रभावशाली है। उनके हृदय में से निकले हुए शब्दों में वो शक्ति है जो भाव के विश्वास की गंभीरता में से निकलती है। उनकी बाणी में से निश्चय ही प्रकाशमयी सौहार्द वाले प्रभावशाली अमूल्य नमूने निकलते हैं, जो उनकी सूझ, ईमानदारी एवं निडरता का पता देते हैं। गुरु साहिब की दलीलें प्रेरणादायक एवं अत्यंत प्रभावशाली हैं।

गुरु जी की शैली एवं शब्दावली जादू का असर रखती है, जिसके द्वारा वे सिक्खी के प्रारंभिक संकल्प बड़ी सरलता एवं शालीनता से वर्णन करते हैं। उनकी बाणी में से मौलिकता, आध्यात्मिक गहराई तथा नैतिक साहस का प्रकटावा होता है। वे सच्चाई का आंतरिक-भाव खूब अच्छी तरह बयान करते हैं और मानव-मन की द्वंदता को साफ़ करते हैं। उनका विश्वास है कि श्री गुरु नानक देव जी की शिक्षा समूह मानवता के लिए है। गुरु साहिबान ने कोई संकीर्ण फ़िलासफ़ी लोगों पर नहीं थोपी बल्कि समूह मानवता के लिए सदा सत्य रहने वाले धर्म-सिद्धांत कायम किए ताकि इनसे सारे मतों के अनुयायी लाभ प्राप्त कर सकें। इसीलिए गुरु जी ने सिक्ख-फलसफा लोक-भाषा में दर्शाया। उनकी बाणी में से सच, प्यार तथा फ़र्ज-शनासी जैसे दैवी गुण झलकते हैं। उनके विचार दैवी-प्रेम और मानव-सहानुभूति से ओत-

प्रोत हैं। उन्होंने चिन्हों-चित्रों के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करने का सफल यत्न किया है। उनके द्वारा मुश्किल एवं कठिन विचार भी इतनी सरलता से प्रस्तुत किए गए हैं कि साधारण बुद्धि वाले मनुष्यों को भी समझने में कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि चिन्ह-चित्र रोज के सर्वसाधारण जीवन में से लिए गए हैं।

श्री गुरु अरजन देव जी के मीठे शब्दों का असर बहुत प्रभावशाली है। इन पर साहित्यक रंग चढ़ा होने के कारण इनमें मानव-रूह को तृप्त करने की शक्ति है। गुरु जी ने अपनी बाणी में घरेलू उपमाएं इस्तेमाल करके उसे साधारण लोगों के समझने योग्य बना दिया। उनके अनुसार, श्रेष्ठ साहित्य वही है जो मनुष्य के मन को संतुष्ट करता है। गुरु जी सिक्खी-सिद्धांतों को अनूठे ढंग से प्रचारित करते हैं। पंचम पातशाह ने गुरु नानक साहिब द्वारा दर्शाए मार्ग पर चलते हुए वही राह अख़्तियार की।

श्री गुरु अरजन देव जी की बिजली की-सी चमक वाली बौधिकता एवं गतिशील योग्यता व प्रभावशाली शख़्सियत के कारण सिक्ख कौम का सम्मान और बढ़ा। उन्होंने आध्यात्मिक विषयों का विश्लेषण अपनी बाणी में इतनी ऊंची योग्यता के साथ किया कि बाणी पढ़ने वाले जिज्ञासु की अकाल पुरख में श्रद्धा एवं विश्वास खुद-ब-खुद बढ़ता चला जाता है। गुरु जी ने मानव-मन को अकाल पुरख की तरफ मोड़ने का सफल यत्न किया है। उनका विश्वास था कि मानवता की सच्ची सेवा लोगों की गिरी हुई शख़्सियत को ऊंचा उठाने में ही है। उनका कहना है कि प्रभु के साथ अभेद होने पर जो प्रसन्नता प्राप्त होती है वो सारे सांसारिक सुखों की प्राप्ति से भी नहीं होती। वास्तविक सुख तो परमात्मा की रज़ा में राज़ी रहने तथा अंदर से हउमै को मार मुकाने में ही है। उनका कथन है :

हरि जो किछु करे सु हरि किआ भगता भाइआ ॥
जन नानक हउमै मारि समाइआ ॥
इनि बिधि कुसल होत मेरे भाई ॥
इउ पाईऐ हरि राम सहाई ॥ (पन्ना १७६)

यह वो खुशी है जो सांसारिक भोगों एवं पदार्थों की प्राप्ति से नहीं मिल सकती। यदि यह मिल सकती होती तो अमीर आदमी कभी दुखी न होता। आज के युग में विज्ञान की तरक्की से मनुष्य के लिए शारीरिक सुखों के तो सभी साधन उपलब्ध किए जा सकते हैं, लेकिन यह खुशी वो मानसिक प्रसन्नता है जो भोग-पदार्थों, माया के ऐश्वर्य से प्राप्त नहीं की जा सकती। गुरु साहिब जिज्ञासु को सावधान करते हुए फरमान करते हैं :

हरि गुण गाउ मना सतिगुरु सेवि पिआरि ॥ . . .
मेरी मेरी किआ करहि जिनि दीआ सो प्रभु लोड़ि ॥
(पन्ना ५०)

पंचम पातशाह का फरमान है कि मनुष्य-जन्म का लाभ यही है कि मनुष्य नाम-सिमरन में लगे :

लख चउरासीह भ्रमतिआ दुलभ जनमु पाइओइ ॥
नानक नामु समालि तूं जो दिनु नेड़ा आइओइ ॥
(पन्ना ५०)

मानव जीवन-मूल्यों का सम्बंध जब तक अकाल पुरख के साथ नहीं जोड़ेंगे, हम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकेंगे। मानव भ्रातृत्व-भाव, प्रेम, दान-पुण्य, साधसंगत एवं सहानुभूति आदि सब गुण अकाल पुरख के प्यार में से ही उत्पन्न होते हैं। आवश्यकता है, मनुष्य को अपनी सियानपों का त्याग करके, वाहिगुरु पर भरोसा करके, उसके मिलन के लिए अरदास करने की। आप ने फरमान किया है :

कछू सिआनप उकति न मोरी ॥
एक आस ठाकुर प्रभ तोरी ॥
करउ बेनती संतन पासे ॥

मेलि लैहु नानक अरदासे ॥ (पन्ना ७५९)

वाहिगुरु को भूलने से सब तकलीफें, परेशानियां आ घेरती हैं। मनुष्य अपने इस किए का खुद जिम्मेदार है। उसका अच्छा-बुरा किया ही उसके जीवन पर प्रभाव डालता है और इसी से उसके आचरण, शख़्सियत तथा विकास का सम्बंध है। अपने किए कर्मों से छुटकारा केवल अकाल पुरख की कृपा से ही हो सकता है और उसी की कृपा का सम्बंध हमारी अरदास-विनती के साथ है। इस विचार को गुरु जी ने इस प्रकार प्रकट किया है :

कतिकि करम कमावणे दोसु न काहू जोगु ॥
परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ॥ . . .
कीता किछू न होवई लिखिआ धुरि संजोग ॥
वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग ॥
(पन्ना १३५)

बुरे या भले कर्म मनुष्य खुद करता है और इसी के अनुसार उसका भाग्य बनता है। हमारा वर्तमान हमारे भूत (काल) के साथ हमारे कर्मों के कारण जुड़ा होता है। भूत (काल) के बंधन प्रभु-चरणों में अरदास करने से, किए अवगुणों के पश्चाताप एवं नेक पुरुषों की लगातार संगत से, सबसे अधिक प्रभु-नाम-सिमरन करने से टूट जाते हैं। श्री गुरु अरजन देव जी ने सोरठि राग में फरमान किया है :

भगति भंडार गुरि नानक कउ सउपे फिरि लेखा मूलि न लइआ ॥ (पन्ना ६१२)

गुरबाणी का एक अन्य फरमान है :

संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उतरिआ मन का धोखा ॥
धरम राइ अब कहा करैगो जउ फाटिओ सगलो लेखा ॥ (पन्ना ६१४)

बुरे कर्मों का नाश भी प्रभु की कृपा द्वारा होता है। अपनी अहं-भावना के कारण मनुष्य अपने पूर्व के कर्मों से दुखी होता है। यदि मनुष्य अहं का त्याग करके सतिगुरु की शरण ले ले तो पूर्व के कर्मों से छुटकारा पाया जा सकता है। जब बड़े भाग्यों के कारण प्रभु-मिलन हो जाए तो सब पापों का नाश हो जाता है :

वडभागी मेरा प्रभु मिलै तां उतरहि सभि बिओग ॥
नानक कउ प्रभ राखि लेहि मेरे साहिब बंदी मोच ॥ (पन्ना १३५)

सच्चे हृदय से किया प्रायश्चित तथा आगे से किए नेक कर्म, पूर्व के पापों पर भारी हो जाते हैं। गुरमति की कर्म-फ़िलासफ़ी से कृपा-सिद्धांत भी जुड़ा हुआ है। गुरु साहिब ने गृहस्थ जीवन के त्याग के बारे में फरमाया है कि जो लोग किसी विशेष रंग के कपड़े पहन कर घर का त्याग कर देते हैं, धूणियां रमाते हैं, घर-घर जाकर मांगते फिरते हैं, सन्यास का ढोंग रचा कर दुष्कर्म करते हैं, मौन धारण कर लेते हैं, अन्न-जल का त्याग कर देते हैं, अहंकार के मारे हुए वाहिगुरु की रज़ा को नहीं समझते, वे कभी भी वाहिगुरु को प्रसन्न नहीं कर सकते। श्री गुरु अरजन देव जी के अनुसार त्याग का सिद्धांत भांज वाला तथा गैर-यथार्थक है। धर्म, जीवन से भागना नहीं सिखाता, धर्म तो संघर्षमयी जीवन का नाम है। जीवन सामाजिक-राजनैतिक संघर्ष का नाम है। जीवन से सम्बंधित सभी सिद्धांत इसी संदर्भ में देखने चाहिए। धर्म, ज्ञान, सरम, करम की सीढ़ियां चढ़कर ही शिख़र (सचखंड) पर पहुंचा जा सकता है।

जीवन परमात्मा द्वारा मिला एक अमूल्य तोहफा है, खज़ाना है। गुरु पातशाह इस संसार को 'भूमि रंगावली' मानते हैं तथा 'सुहावड़ी उमर' एवं 'सुवंनड़ी देह' की प्रेरणा देते हैं। गुरु जी का विचार है कि यदि माया ने मनुष्य पर प्रभावशाली होना है तो वो गृहस्थ अवस्था में ही नहीं बल्कि उदासी (त्याग) अवस्था में भी हो सकती है। फिर गृहस्थ को छोड़ कर त्यागी बनने की क्या आवश्यकता है?



शहीदों के सिरताज : श्री गुरु अरजन देव जी

*-स. बलविंदर सिंघ बालम**

श्री गुरु अरजन देव जी का नाम इतिहास में सूर्य की भांति सदैव चमकता रहेगा। उन्होंने अपने नियमों, अनुशासन, पंथ तथा धर्म के लिए जो शहीदी दी, वह बेमिसाल है। दुनिया के किसी भी व्यक्ति ने आज तक इतने दुख, कष्ट और यातनाएं झेलकर अपने राष्ट्र की खातिर, देश-धर्म की खातिर शहीदी नहीं दी। इस तरह की शहीदी का जिक्र हमेशा-हमेशा श्री गुरु अरजन देव जी के साथ जुड़ा रहेगा। वे सहनशीलता के समुद्र, वाहिगुरु की कृपा में रहने वाले, बुलंद इरादे वाले, सांझीवालता के पथ-प्रदर्शक, संतुलित मस्तिष्क एवं इंसानियत के पुजारी थे। वे जुल्म के आगे डट जाने वाले निर्भीक हृदय के गगन थे, जिसमें लाखों-कोटि चांद-सितारे चमकते थे मुहब्बत के, उद्यम के, इंसानियत के। श्री गुरु अरजन देव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब की संपादना मानव जीवन-मूल्यों को मद्देनजर रखकर की थी। इस पावन ग्रंथ का कोई भी सलोक पढ़ लिया जाये वह मावन जीवन-मूल्यों को ही दृढ़ कराता है। इस महान ग्रंथ की अपेक्षा तथा कुछ राजनीतिक कारणों से ही गुरु जी को शहीदी का जाम पीना पड़ा।

श्री गुरु अरजन देव जी का जन्म १९ वैशाख, संवत् १६२० तद्नुसार १५ अप्रैल, १५६३ ई. को श्री गुरु रामदास जी के गृह में माता भानी जी की कोख से श्री गोइंदवाल साहिब, पंजाब में हुआ। शादी के काफी अरसे बाद उनको पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई जो छठे गुरु श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब के नाम से विख़्यात हुए। पुत्र के जन्म समय से ही उस पर कई प्रकार के भूमिगत हमले होते रहे। श्री गुरु अरजन देव जी का बड़ा भाई प्रिथी चंद उनसे दुश्मनी रखता था। वो गद्दी एवं धन का लालची था। घर का सारा प्रबंध प्रिथी चंद के हाथों में था। श्री गुरु अरजन देव जी के कई पत्र जो उन्होंने विरह में पिता-गुरु जी को लिखे थे, प्रिथी चंद चुरा लेता था। बाद में उसकी यह चोरी पकड़ी गई जिससे वह शर्मिंदा हुआ। गुरु जी कई भाषाओं के ज्ञाता थे, जैसे कि हिंदी, संस्कृत, पंजाबी, फारसी, बृज, मुलतानी इत्यादि। उनकी मेहनत, मोह-त्याग, निष्काम सेवा, आध्यात्मिक रुचि इत्यादि को देखते हुए उनके पिता जी ने उनको गद्दी की बख़्शिश देने का निर्णय लिया। वे २ आश्विन, सं. १६३८ को गुरगद्दी पर विराजमान हुए। श्री गुरु अरजन देव जी के तीसरे भाई का नाम बाबा महादेव था।

श्री गुरु अरजन देव जी कुछ समय श्री अमृतसर में रह कर 'वडाली' नामक गांव में चले गये। वहीं साहिबजादा हरिगोबिंद साहिब जी का जन्म हुआ था। गुरु साहिब निर्माण-कार्यों में काफी दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने श्री अमृतसर आकर अमृत सरोवर को पक्का करवाया, श्री हरिमंदर साहिब का निर्माण करवाया, संतोखसर बनवाया, तरनतारन शहर बसाया तथा वहां सरोवर की नींव रखी। गुरु जी ने करतारपुर, छेहरटा साहिब और श्री हरिगोबिंदपुर भी

**ओंकार नगर, गुरदासपुर (पंजाब), मो. ९८१५६-२५९०९*

बसाया। लाहौर में बाउली का निर्माण करवाया।

श्री गुरु अरजन देव जी की दीर्घ प्राप्ति थी श्री गुरु ग्रंथ साहिब का संपादन-कार्य, जो कि उन्होंने १६०१ से लेकर १६०४ ई तक रामसर नामक स्थान पर बैठ कर पूर्ण किया। भाई गुरदास जी ने इस ग्रंथ को अपने हाथों से लिखा। इसका पहला प्रकाश १६०४ ई को श्री हरिमंदर साहिब, श्री अमृतसर में किया गया।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब के तैयार होने पर कई ईर्ष्यालुयों ने इसकी विरोधता की। प्रिथी चंद ने इस विरोधता को और भड़काया। भक्त कान्हा, छज्जू, पीलू एवं शाह हुसैन जैसे कवियों का कलाम इस पावन ग्रंथ में शामिल नहीं किया गया। इन कवियों ने ईर्ष्या करके वर्तमान सत्ताधारी हकूमत के मालिक जहांगीर तक गलत बातें पहुंचाने में कोई कसर न छोड़ी। जहांगीर ने इस ग्रंथ के कई पन्ने पढ़ा कर देखे परंतु उसको कहीं भी इसलाम धर्म के विरुद्ध कोई चिन्ह तक न मिला। दूसरी तरफ थे शेख़ अहमद सरहिंदी तथा शेख़ फरीद बुखारी। इन दोनों ने इस महान ग्रंथ की सबसे ज्यादा विरोधता की। जहांगीर को भड़काया गया कि इस ग्रंथ में इसलाम के विरुद्ध लिखा गया है। चंदू शाह, जो कि लाहौर में सूबे का दीवान था, वह भी गुरु जी से दुश्मनी रखता था। चंदू ने अपनी बेटी की शादी गुरु जी के बेटे के साथ करनी चाही परंतु गुरु जी ने इस शादी के लिए इंकार कर दिया। चंदू का क्रोध सातवें आसमान को छू गया। उसके सीने में बदले की चिंगारी सुलगने लगी। चंदू शाह, शेख़ अहमद सरहिंदी तथा शेख़ फरीद बुखारी ने कई किस्म की साजिशें रचनी श्री गुरु अरजन देव जी के विरुद्ध शुरू कर दीं। एक झूठी साजिश बना कर जहांगीर को पहुंचा दी गई कि बागी खुसरो को गुरु जी ने पनाह दी है, उसकी मदद की है। शेख़ अहमद सरहिंदी तथा शेख़ फरीद बुखारी इत्यादि ने यह साजिश एक फर्जी शिकायत बना कर जहांगीर तक पहुंचा दी। गुरु जी ने खुसरो की कोई सहायता नहीं की थी। खुसरो विपदा की स्थिति में गुरु-घर आया था, जिसके द्वार सभी के लिए हर समय खुले रहते हैं। अत: सारी साजिश झूठी थी। खुसरो को पनाह देने पर जहांगीर ने गुरु जी को दो लाख रुपये जुर्माना कर दिया। जुर्माना अदा न करने पर आपको गिरफ्तार कर लिया गया। तीन रातें तथा तीन दिन अत्यंत यातनाएं दी गईं। जून की कड़कती धूप में गर्म तवी पर गुरु जी को बिठाया गया जिसके नीचे आग की लपटें थीं तथा ऊपर से गर्म रेत की बौछार। इस पर भी गुरु जी ने अपने धैर्य को कायम रखा। यह दृश्य देखने वालों के हृदय कांप उठे।

१ आषाढ़, संवत् १६६३ तद्नुसार ३० मई, १६०६ को जहांगीर के हुक्म से रावी दरिया के किनारे ले जाकर गुरु जी को शहीद कर दिया गया। आप की याद में अब वहां गुरुद्वारा डेरा साहिब बना हुआ है।

श्री गुरु अरजन देव जी ने ३० रागों में २३१२ शबदों की रचना की।



भक्त कबीर जी की सामाजिक चेतना

*-डॉ. परमवीर सिंघ**

भक्त कबीर जी हिंदोस्तान के उन भक्तों तथा समाज-सुधारकों में से थे जिन्होंने प्रचलित कर्मकांडी मार्ग से हटकर चलने का हौसला किया तथा साधारण लोगों को वहमों-भ्रमों से मुक्त होकर स्वस्थ समाज की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया। 'महान कोश' कृत भाई कान्ह सिंघ नाभा के अनुसार, भक्त कबीर जी का जन्म ज्येष्ठ सुदी १५, संवत् १४५५ को बनारस (काशी) की धरती पर हुआ तथा देहांत संवत् १५७५ को मगहर में हुआ। भक्त कबीर जी ने प्रचलित प्राचीन कर्मकांडी रीति-रिवाजों का डट कर विरोध किया तथा प्रेम व सेवा जैसे आदर्शों को पुन: जागृत करके समाज में आई हुई स्थिरता को खत्म करने का भरपूर यत्न किया। इन आदर्शों को पुन: जागृत करने का परिणाम यह हुआ कि जहां पहले लोग एक दूसरे को भेदभाव की नज़रों से देखते थे, वहां अब उनको इकट्ठे मिल बैठने का मौका मिला। इसका आम लोगों को तो बहुत लाभ पहुंचा, किंतु तथाकथित ऊंची जाति के लोगों में विरोध की भावना उत्पन्न हो गई। इस विरोधता के बावजूद भी भक्त कबीर जी ने अपना एकजुटता एवं भाईचारे का उपदेश लोगों तक पहुंचाया।

हिंदोस्तानी समाज में अक्सर ऐसा होता आया है कि तथाकथित ऊंची जाति के लोग तथाकथित नीची जाति के लोगों को ऊंचा नहीं उठने देते तथा उनको हर किस्म की बंदिशों व परेशानियों में जकड़ने का यत्न किया जाता है ताकि तथाकथित नीची जाति के लोग उनके अधीन रहें और उनके हर हुक्म को सिर झुकाकर मानते रहें। इस परेशानी का सामना भक्त कबीर जी को भी करना पड़ा। उनकी परेशानी थी भी दोगुनी, क्योंकि जहां एक तरफ तथाकथित ऊंची जाति के ब्राह्मणों का विरोध था वहीं दूसरी तरफ मुसलमान भी उनके सर्व-सांझीवालता के उपदेश के विरोधी थे। वे हिंदुओं को काफ़िर कहकर बुलाते थे तथा मुसलमानों को ऊंचा समझते थे। इस तरह हिंदू भी मुसलमानों को हमलावर के रूप में देखते थे। दो प्रमुख प्रचलित संप्रदायों के कर्मकांडों का विरोध करने का परिणाम यह हुआ कि भक्त कबीर जी को हाथी के आगे फेंक दिया गया, किंतु *'भगता की सार करहि आपि'*. . जैसे महावाक्य के अनुसार परमात्मा ने भक्त कबीर जी का बाल भी बांका न होने दिया। भक्त कबीर जी खुद फरमान करते हैं :

भुजा बांधि भिला करि डारिओ ॥
हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसति भागि कै चीसा मारै ॥
इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥१॥ . . .
तीनि बार पतीआ भरि लीना ॥
मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ॥
चउथे पद महि जन की जिंदु ॥

(पन्ना ८७०-७१)

इसी तरह भक्त कबीर जी को दूसरी बार फिर समय के बादशाह सिकंदर लोधी ने जंज़ीरों से जकड़ कर काशी में दरिया गंगा में डुबोकर मारने का यत्न किया, परंतु वो असफल रहा।

** सिक्ख विश्व कोश विभाग, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला-१४७००२, मो. ९८७२०-७४३२२*

दरिया में फेंकते ही भक्त कबीर जी की जंज़ीरें टूट गईं। परमात्मा ने फिर अपने भक्त को बचा लिया। भक्त कबीर जी बताते हैं :

गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ॥
जंजीर बांधि करि खरे कबीर ॥१॥ . . .
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ॥
म्रिगछाला पर बैठे कबीर ॥ *(पन्ना ११६२)*

भक्त कबीर जी ने उस समय के समाज में आ चुकी एवं आ रही कुरीतियों की बड़ी सुहजता से व्याख्या करके इन कुरीतियों को दूर करने का रास्ता बताया। वे न सिर्फ समय की मुगल सरकार का विरोध करते हैं बल्कि उस समय मुसलिम तथा हिंदू धर्म के अनुयाइयों में आ रही गिरावट का स्पष्ट चित्रण भी प्रस्तुत करते हैं। जहां वे 'सुन्नत' के सही अर्थों तक पहुंचने का संदेश देते हैं वहीं 'जनेऊ' की आड़ तले किये जा रहे कर्मकांडों का भी तीखा एवं प्रत्यक्ष विरोध करते हैं। वे जात-पात का अहंकार न करने पर ज़ोर देते हैं। भक्त कबीर जी तथाकथित सन्यासियों का भेद भी खोलते हैं कि अगर नग्न होकर फिरने से योग की प्राप्ति हो जाए तो जंगल के तो सभी पशु आदि मुक्त हो जाएं :

नगन फिरत जौ पाईऐ जोगु ॥
बन का मिरगु मुकति सभु होगु ॥
(पन्ना ३२४)

ऐसा लगता है कि भक्त कबीर जी ने तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक स्थिति को बड़ी गहनता से देखा और उस पर उचित टिप्पणी की। वे इस स्थिति से विरक्त थे, क्योंकि यह सब कुछ दिखावा-मात्र ही था। परमात्मा के साथ सुरति मिली होने के कारण भक्त कबीर जी समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करना चाहते थे। वे बताते हैं कि अज्ञान के अंधेरे में चैन से कभी नहीं सोया जाता। राजा हो या कंगाल, दोनों एक जैसे होते हैं, दुखी होते हैं। जैसे वृक्ष की छाया सारा दिन फिरती रहती है तथा सूर्य अस्त होने पर बिलकुल ही नाश हो जाती है, इसी तरह माया का हाल है, कभी किसी एक हाथ में तो कभी दूसरे के हाथ में :

अंधकार सुखि कबहि न सोई है ॥
राजा रंकु दोऊ मिलि रोई है ॥
जस देखीऐ तरवर की छाइआ ॥
प्रान गए कहु का की माइआ ॥
(पन्ना ३२५)

मुसलिम धर्म में रोज़ा रखना पवित्र माना जाता है। भक्त कबीर जी वास्तविक मर्म समझने का उपदेश देते हैं। रोज़ा तो इसलिए रखा जाता है ताकि मन एवं शरीर की पवित्रता बनी रहे। भक्त जी फरमान करते हैं कि हे इंसान! तू रोज़ा रखता है तथा अल्लाह को मनाता है। दूसरी तरफ स्वाद के पीछे लगकर जीवों को मारता है। अपने आप का ही ख़्याल करता है दूसरों की तरफ नज़र नहीं मारता। तू यह साबित करने पर ज़ोर लगा देता है कि मैं ही रब का बंदा हूं और उसका हुक्म मानता हूं। यह तो स्पष्ट खुदगर्जी है :

रोजा धरै मनावै अलहु सुआदति जीअ संघारै ॥
आपा देखि अवर नही देखै काहे कउ झख मारै ॥
(पन्ना ४८३)

भक्त कबीर जी पाखंड करने वाले किसी भी व्यक्ति को बख्शते नहीं। उनकी नज़र में हिंदू-मुसलमान का कार्य-व्यवहार ठीक नहीं। अगर ब्राह्मण को मात्र इसी कारण अपनी तथाकथित ऊंची जाति का अहंकार है कि उसने सूत का जनेऊ पहना हुआ है तो भक्त कबीर जी यह दलील देते हैं कि इस ढंग से तो वे खुद बड़े ब्राह्मण हुए, क्योंकि हमारे घर में तो प्रतिदिन सूत का ताना बुना जाता है। लोगों के सामने दिखावा करने का तो वे बार-बार खंडन

करते हैं। उनके अनुसार रोज़ा रखने से, नमाज़ पढ़ने से तथा कलमा पढ़ने से स्वर्ग नहीं मिलता :

रोजा धरै निवाज गुजारै कलमा भिसति न होई ॥
(पन्ना ४८०)

साधारणत: तब यह माना जाता था कि सन्यासी बनकर तथा मौनधारी होकर परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है तथा अमर हुआ जा सकता है। उस समय की स्थिति ही ऐसी थी कि इस सब कुछ का बोलबाला था। भक्त कबीर जी फरमान करते हैं कि चाहे कोई योगी, जती, तपी, सन्यासी होकर ज्यादा तीर्थों पर फिरे या मुंडन करके योगी या जटाधारी हो, तो भी अंत को काल के वश में होगा :

जोगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमना ॥
लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ॥
(पन्ना ४७६)

इस ढंग से जो अपने आप को 'संत' कहलाते थे, भक्त कबीर जी ने उनके इस पाखंड को अच्छी तरह से प्रकट किया है। इनके लिए बहुत स्पष्ट तथा सख़्त भाषा का प्रयोग किया गया है। भक्त जी के अनुसार कई लोगों ने साढ़े तीन-तीन गज की धोतियां पहनी हुई हैं, गलों में जिन्होंने जपमाला पहनी हुई है हाथ में दमकदे लोटे पकड़े हुए हैं; जनेव तीन पहने हुए हैं, इनको हरि के संत न कहो, ये बनारस के ठग हैं। भक्त कबीर जी को ऐसे दिखावे अच्छे नहीं लगते जो केवल खाने-पीने तथा लोगों को गलत रास्ते पर डालने की ओर ही लगे हुए हैं :

गज साढे तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग ॥
गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग ॥
ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग ॥
ऐसे संत न मो कउ भावहि ॥
डाला सिउ पेडा गटकावहि ॥ (पन्ना ४७६)

ऐसे लोगों का भक्त जी को अच्छा न लगना स्पष्ट करता है कि ऐसे लोग भेस बनाकर भोली-भाली जनता को ठग रहे थे; लोगों को लूटने के नये-नये तरीके ढूंढते थे, ताकि उनका पेट भरता रहे; साधारण लोग चाहे जैसी भी जिंदगी गुजारें, किंतु उनका पेट लोग अपनी खून-पसीने की कमाई से भरते रहें। लोगों को केवल नये-नये ढंग-तरीके से अपनी तरफ खींचना ही उनका काम था। इनमें से एक पाखंड यह था कि जो लोग अमुक जगह पर अमुक दिन जाकर स्नान करेंगे, उनको मुक्ति मिलेगी। मात्र एक-दो स्नान करने से बात नहीं बनती थी। इसके लिए लगातार पांच या ग्यारह महीने, खास दिन स्नान करने का हुक्म था। भक्त कबीर जी ने ऐसे स्वार्थी तथा कर्मकांडी लोगों से बचने का उपदेश दिया है तथा कहा है :

जल कै मजनि जे गति होवै नित नित मेंडुक नावहि ॥
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ॥ (पन्ना ४८४)

वे और कहते हैं :

लउकी अठसठि तीरथ न्हाई ॥ कउरापनु तऊ न जाई ॥२॥
कहि कबीर बीचारी ॥ भव सागरु तारि मुरारी ॥३॥
(पन्ना ६५६)

इतना ही नहीं, कर्मकांडियों द्वारा मुक्ति की प्राप्ति के लिए एक खास स्थान भी बना लिया गया। वे प्रचार करते थे कि जो लोग काशी में नहीं मरते उनको मुक्ति नहीं मिलती, इसलिए हिंदू धर्म से सम्बंधित लोग जीवन के आखिरी समय काशी जाने की बात करते हैं। भक्त कबीर जी इन वहमों-भ्रमों का खंडन करते हुए फरमान करते हैं कि मुक्ति किसी खास स्थान पर नहीं, बल्कि परमात्मा का नाम मन में बसाने पर कहीं भी हो सकती है। इसको वे अपनी व्यवहारिक जिंदगी में लाने के लिए

लंबा समय काशी में रहने के बाद आखिरी समय काशी को छोड़कर मगहर चले गए। भक्त कबीर जी कहते हैं :

कहतु कबीरु सुनहु रे लोई भरमि न भूलहु कोई ॥
किआ कासी किआ ऊखरु मगहरु रामु रिदै जउ होई ॥ (पन्ना ६९२)

अपने अन्य फरमान में भी भक्त कबीर जी काशी तथा मगहर की एक जैसी पवित्र धरती होने का सबूत देते हैं :

तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपति बुझाई ॥
पहिले दरसनु मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई ॥२॥
जैसा मगहरु तैसी कासी हम एकै करि जानी ॥
हम निरधन जिउ इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥
(पन्ना ९६९)

इस तरह भक्त कबीर जी साधारण लोगों को कर्मकांडों से बचने का उपदेश देते हैं कि मनुष्य को फोकट वहमों-भ्रमों तथा कर्मकांडों से बचकर केवल परमात्मा का आश्रय ही लेना चाहिए, जिसको मन में बसाने से हर वस्तु तथा स्थान पवित्र हो जाते हैं और सब प्रकार के दुखों-कलेशों का नाश होता है। भक्त कबीर जी साथ ही यह भी कहते हैं कि हर हिंदू को अच्छा हिंदू तथा मुसलमान को अच्छा मुसलमान बनना चाहिए। भक्त कबीर जी हर सच्चे हिंदू तथा मुसलमान को नमस्कार करते हैं :

सो मुलां जो मन सिउ लरै ॥
गुर उपदेसि काल सिउ जुरै ॥
काल पुरख का मरदै मानु ॥
तिसु मुला कउ सदा सलामु ॥ . . .
जोगी गोरखु गोरखु करै ॥
हिंदू राम नामु उचरै ॥
मुसलमान का एकु खुदाइ ॥
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ ॥(पन्ना ११५९)

सच्चे समाज-सुधारक के रूप में भक्त कबीर जी ने समाज को दीमक को भांति खा रही जात-पात की प्रथा से ऊपर उठकर एक भाईचारे की तरह रहने का उपदेश दिया। उस समय दो ही मुख्य धार्मिक संगठन थे जो कि बाहरी एवं भीतरी रूप में जातियों में बंटे हुए थे-- एक था, हिंदू और दूसरा, मुलसमान। हिंदुओं में जात-पात का मुख्य स्रोत मनु-स्मृति था, जिसने हर वर्ग के लिए कुछ नियम निर्धारित किए हुए थे तथा उनसे यह उम्मीद की जाती थी कि वे मनु-स्मृति की बांट के अधार पर ही काम करें। चाहे कि मनु से पहले बांट का आधार व्यवसाय था परंतु मनु-स्मृति में बांट का आधार जन्म हो गया, जैसे कि मनु कहता है :

१) वेद पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-करवाना, दान देना एवं लेना, ये छ: कर्म ब्राह्मण के बनाए हैं।
२) प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दुनिया के पदार्थों में दिल न लगाना, ये पांच कर्म क्षत्रियों के बनाये हैं।
३) चार पायों की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, सौदागरी करना, ब्याज लेना, खेती करना, ये सात कर्म वैश्य के बनाये हैं।
४) परमेश्वर ने शूद्र का एक ही कर्म इन तीनों वर्गों की सेवा करना बनाया है।

इस तरह जो भी व्यक्ति जिस जाति में जन्म लेगा वह उसी जाति का कहलायेगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, ये पांच जातियां निर्धारित की गईं। इनमें से सबसे बुरी दशा थी शूद्र वर्ग की तथा इतनी ही बुरी दशा थी स्त्रियों की, जो कि केवल घर की चारदीवारी के अंदर ही कैद होकर रह गई थीं और अगर कहीं बाहर आना-जाना भी पड़ता तो घर के किसी पुरुष व्यक्ति को साथ ही जाना पड़ता था, चाहे

वो भाई हो या पिता या पति। किसी भी संप्रदाय के व्यक्ति को दूसरे संप्रदाय या जाति के व्यक्ति के साथ सामाजिक रिश्ते जोड़ने की छूट नहीं थी। वेद पढ़ने तथा अन्य हर प्रकार की धार्मिक क्रियाएं करने का अधिकार केवल ब्राह्मण वर्ग को ही था। हिंदुओं के अतिरिक्त मुसलमान भी दो श्रेणियों में बंटे हुए थे-- शीआ तथा सुन्नी। शीआ संप्रदाय के लोग जहां थोड़ी-बहुत भाईचारक सांझ रखने में विश्वास करते थे, वहीं सुन्नी कट्टर तथा लकीर के फ़कीर थे। इन कट्टरवादियों के प्रभाव के कारण ही मुगल शासकों ने अपने धर्म के प्रचार हेतु तथा लोगों को ज़बरन मुसलमान बनाने के लिए भारतीयों पर बहुत जुल्म किए और तरह-तरह के कर लगाकर उनकी आर्थिक स्थिति को भी कमज़ोर करने की कोशिश की। इसके अलावा भारत भीतरी एवं बाहरी हमलों का भी शिकार था। कहा जाता है कि भक्त कबीर जी का समय उथल-पुथल का समय था। तुगलक वंश का अंत होने पर देश की राजनीति कई टुकड़ों में बंट गई। तैमूर का आक्रमण भारतीय इतिहास की एक भयानक घटना है। ऐसी दयनीय स्थिति में जहां भारत को एक मज़बूत तथा निष्पक्ष शासक की जरूरत थी, जो कि साधारण लोगों में धार्मिक सहनशीलता तथा सामाजिक समानता की भावना पैदा करके एक मज़बूत शासन स्थापित करता तथा लोगों को भीतरी व बाहरी हमलों से बचाता, वहीं दिल्ली का शासन एक बहुत ही कमज़ोर शासक 'सिकंदर लोधी' के हाथों में आ गया। उसके समय हिंदुओं की हालत और भी बदतर हो गई। धार्मिक कट्टरता, साधारण मनुष्य के प्रति नफ़रत तथा निम्न वर्ग के प्रति अवहेलना के भाव ने देश की सत्ता को दूषित बना दिया। इस समय के कमजोर एवं कुचले जा रहे लोगों को जरूरत थी ऐसी शख्सियत की जो उनको जुल्मों से निज़ात दिला सके। यह काम सबसे पहले भक्त कबीर जी ने किया। उनको मालूम था कि लोगों की इस अधोगति का क्या कारण है तथा कैसे इनको ऊंचा उठाया जा सकता है। इस सम्बंध में उन्होंने लोगों को जात-पात तथा भेदभावों से ऊपर उठकर एकजुट होने का न्यौता दिया। उन्होंने सभी व्यक्तियों में एक ही परमात्मा की ज्योति मानते हुए कहा :

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ॥
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥ *(पन्ना १३४९)*

इसी तरह भक्त कबीर जी ने ***"ब्रहम बिंदु ते सभ उतपाती"*** *(पन्ना ३२४)* का उपदेश देते हुए कहा कि सभी व्यक्तियों की उत्पत्ति प्रभु (ब्रह्म) से हुई है, इसी लिए सभी लोग भाई-भाई हैं, कोई ऊंच-नीच नहीं है। जन्म के आधार पर हुई वर्ग-बांट का आधार व्यक्ति के अपने अमल हैं। ब्राह्मण केवल वही है जो ब्रह्म (प्रभु) का चिंतन करे तथा उसके बताये रास्ते पर चले :

कहु कबीर जो ब्रहमु बीचारै ॥
सो ब्राहमणु कहीअतु है हमारै ॥
(पन्ना ३२४)

सच्चे दिल से परमात्मा का नाम लेने वाले व्यक्ति के सम्मान में भक्त कबीर जी कहते हैं :

जो जन लेहि खसम का नाउ ॥
तिन कै सद बलिहारै जाउ ॥ *(पन्ना ३२८)*

इस तरह कहा जा सकता है कि भक्त कबीर जी ने लोगों को प्रचलित कर्मकांडों में से निकालने तथा जात-पात के भेद-भाव का विरोध करने का न्यौता दिया है। साथ ही यह बताने का भी यत्न किया कि मानसिक आज़ादी के बिना मज़बूत एवं दृढ़ समाज की सृजना नहीं की जा सकती। हर वर्ग, हर कौम तथा हर धर्म के सम्मान के साथ-साथ जरूरी है कि

समाज में मानव धर्म की स्थापना की जाये। यही भक्त कबीर जी का उद्देश्य एवं उपदेश है।

संदर्भ-सूची :

१. मनु स्मृति, अध्याय पहला, श्लोक ८८-९१, अनुवादक गणेशा सिंह भाटिया

२. डॉ. गुरनाम कौर (बेदी), गुरु ग्रंथ साहिब विच दरज कबीर बाणी दा आलोचनातमिक अधिऐन, पृष्ठ ५७-५८

(अनुवादक-- स. गुरप्रीत सिंघ भोमा)



कविता

श्री गुरु अरजन देव जी : एक श्रद्धांजलि

-श्री सुरजीत दुखी*

हसरत दबाने वाले, हकीकत बता जाते हैं।
करामात नहीं करते, कर्म सिखा जाते हैं।
जल जाते हैं खुद, फूल बरसा जाते हैं।
इन्हें कहते हैं 'गुरु', ये जीना बता जाते हैं।
आज क्योंकि समझने वाले कम हो गए।
इसीलिए खुशियां कम, ज्यादा गम हो गए।
ज़िंदगी में जीना हर 'गुरु' ने सिखलाया है।
हम सब समझ सकें, गुरु ग्रंथ साहिब बनाया है।
शमां जिंदगी के थे, वे ऐसे परवाने।
देश, कौम के भी थे, ऐसे दीवाने।
रहम था, मुहब्बत थी, अजब तासीर थी उनकी।
कर्म उनके ही तो बस, तकदीर थी उनकी।
वक्त के हाकिमों ने उनको दबकाया-धमकाया था।
फिर हार मान ली अपनी, जब होश आया था।
शहीद हो गए ईमान पर जिसे, हाकिमों ने दिल से भुलाया था।
दर पे जो भी आया उसे, रास्ता दिखाया था।
न झूठी शोहरत पे कभी भी, मन लगाया था।
हकीकत का घर बस, एक ही, सब को बताया था।
जला आग, तपा लोह, वो कहर ढाना चाहते थे।
हाकिम अपनी ताकत का, जलवा दिखाना चाहते थे।
देखा हुनर कुदरत का, फिर घबरा गये सारे,
गाय की खाल में वो बंद उन्हें, कर जाना चाहते थे।
देश, कौम, कल्चर से, प्यार हो तो ऐसा हो!
सिखाया गुरु अरजन ने, त्याग हो तो ऐसा हो!
संभले खुद और संभाले हुस्न देश का,
मुल्क आज़ाद है, इसमें ख़्याल हो तो ऐसा हो!
दुनिया वालो! ऐसे गुरु को प्रणाम कर देखो!
हकीकते-ज़िंदगी पे भी तुम, कुछ काम कर देखो!
दिखाया रास्ता सच्चा है, संभाल कर इसे रखना,
अपने मुल्क को न इस कद्र, नीलाम कर देखो!
साल में एक बार नहीं, हर रोज़, दिन यह मनाओ!
शहीदों की यादों को हर दम, दिल में दोहराओ!
उनके कर्म को सीखो, रास्ता सच्चा अपनाओ!
'दुखी' नज़रें उठाओ जब भी, उनको सामने पाओ!



**३३२/९, गली जट्टां, अंदरून लाहौरी गेट, श्री अमृतसर। मो: ९९१४५३१२२१*

भक्त कबीर जी द्वारा मानव-समाज का मार्गदर्शन

*-डॉ. साहिब सिंघ अरशी**

भक्त कबीर जी ने तथाकथिक पिछड़े वर्ग में चेतनता लाकर मानव समाज में उसका भी दर्जा ऊंचा कर दिया। 'महान कोश' कृत भाई कान्ह सिंघ नाभा के अनुसार, आपका जन्म एक विधवा (ब्राह्मण) स्त्री के उदर से ज्येष्ठ सुदी १५, संवत् १४५५ को हुआ। आपका पालन-पोषण अली (नीरू जुलाहा) ने अपना पुत्र बनाकर किया तथा 'कबीर' नाम रखा। आपको इसलामी मत की शिक्षा दी गई, परंतु आपने अपने स्तर पर हिंदू मत का भी अध्ययन किया। आपकी शादी बीबी लोई जी के साथ हुई, जिसकी कोख से एक पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम 'कमाल' रखा गया।

'काशी' विद्वानों का प्रमुख स्थान होने के कारण भक्त कबीर जी को संतों-साधुओं की संगत तथा उनके साथ चर्चा करने का अच्छा मौका मिला। इस प्रकार आप भी अच्छे आलोचक बने। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में आप जी की बाणी के कुल ५३७ शबद हैं। आप जी के समय समाज में हिंदू मत या पौराणिक मत ही प्रचलित था। यह साधारण गृहस्थियों का धर्म था। समाज में अन्य कई प्रकार की संस्थाएं भी अपना ज़ोर दिखा रही थीं। भक्त कबीर जी ने खुद इस बात को स्वीकार किया है कि भक्त रामानंद जी की संगत मिल जाने पर उनके सभी मानसिक दुख दूर हो गए हैं। चाहे भक्त रामानंद जी 'ब्राह्मण' थे तथा भक्त कबीर जी 'जुलाहा', परंतु *"प्रेम न पूछे जात"* वाली बात थी। भक्त रामानंद जी ने जिस प्रभु-नाम के आलौकिक बीज को बोआ, भक्त कबीर जी ने उसको प्रेम की धारा से सींचा। भक्त कबीर जी ने ठोक-बजाकर कहा कि परमात्मा के बिना इस दुनिया में अपना कोई नहीं है। आप बलिहार जाते हैं उस गुरु से जिसने मनुष्य से देवता बना दिए हैं।

भक्त कबीर जी की बाणी वो बेल है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज बोने से उगी। उन दिनों उत्तर के हठयोगियों तथा दक्षिण के भक्तों के विचारों में मौलिक अंतर था और दोनों में कोई भी झुकने के लिए तैयार नहीं था। योगी जात-पात के भेदभाव पर चाहे चोट तो करते थे परंतु अंदरूनी एवं बाहरी तौर पर योग मत को मानने वाला हरेक स्वयं को समाज में अन्य से ऊंचा समझता था और दिखावे से काम लिया जाता था। भक्त कबीर जी सच के ग्राहक थे तथा कोई अन्य मोह-ममता उनको अपने रास्ते से अलग नहीं कर सकती थी।

निर्गुण का अनुभव अंतरात्मा में होता है और यह होता है गुरु की कृपा से। निर्गुण की कथा को भक्त कबीर जी ने 'सहज की कथा' कहा है तथा 'सहज' निर्गुण की दशा भी है और

***५७०७, माडर्न डुपलेक्स, मनीमाज़रा (चंडीगढ़)-१६०१०१, मो. ९४६३३-२७५५७*

मानव की आत्मिक प्राप्ति भी। 'सहज की कथा' का अनुभव इस तरह का है जो कि एक संकल्प है। भक्त कबीर जी के अनुसार :

सहज की अकथ कथा है निरारी ॥
तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ॥ (पन्ना ३३३)

निर्गुण का अनुभव मनुष्य को 'सहज' में पहुंच कर होता है, जब मनुष्य पूर्ण विवेकी हो जाता है-- 'ब्रह्मज्ञानी'। भक्त कबीर जी ने गुरबाणी की तरह परमात्मा को पाने के लिए *"सिरु धरि तली"* के विचार को ही लिया। भक्त कबीर जी उस परमात्मा को पाकर सब कुछ उसमें लीन करना चाहते हैं तथा अन्य किसी का समावेश नहीं चाहते। आपके विचारों की पंक्तियां इस प्रकार हैं :

कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा ॥
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा ॥ (पन्ना १३७५)

भगवान के नाम पर पाखंड रचने वालों को भक्त कबीर जी ने कभी नहीं बख़्शा। भक्त कबीर जी 'ज्ञान के हाथी' पर चढ़े, परंतु सहज का दुशाला लिए बिना नहीं; अगर भक्ति की तो 'खाला जी का घर' समझ कर नहीं; अगर किसी विचार का खंडन किया तो केवल खंडन या विरोध करने की इच्छा से नहीं, बल्कि पूर्ण रूप में तथ्यों एवं तर्क के आधार पर सबको प्रेरित किया।

भक्त कबीर जी के समय का समाज पतन की हालत में था। इसलाम मत का ज़ोर था। हर एक संस्था अपना-अपना धर्म बचाने में लगी हुई थी, क्योंकि इसलाम जातिगत विशेषता को आलोप करके सामूहिक धर्म-साधना का प्रचारक था। किसी आचार तथा इसलाम मत को न मानने वाली जाति का कुफ़्र तोड़ना ही उनका मुख्य उदेद्श्य था। भक्त कबीर जी ने मानवता के एक होने का नारा लगाया तथा सबको भेदभाव त्यागने के लिए कहा। आप जी के अनुसार :

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ॥
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥ (पन्ना १३४९)

भक्त कबीर जी के बारे में कहा जाता है कि वे कभी अद्वैत की ओर झुकते दिखाई देते हैं और कभी एकेश्वरवाद की तरफ; वे कभी पुराणों के प्रभाव तले परमात्मा को सगुण-भाव से पुकारते हैं और कभी निर्गुण-भाव से; वास्तव में उनका कोई स्थिर तात्विक सिद्धांत नहीं था। ये बातें भक्त कबीर जी के बारे में विरोधता के भाव की परिचायक हैं। वास्तव में भक्त जी अपने विचारों में स्पष्टता को लेकर चलते हैं। आप जी के अनुसार परमात्मा सर्वव्यापक है। पंडित हो या योगी, राजा हो या प्रजा, वैद्य हो या रोगी, वो (प्रभु) सब में खुद समोया हुआ है। सारा खलक ही खालिक है तथा खालिक ही खलक है। भक्त जी के अनुसार :

लोगा भरमि न भूलहु भाई ॥
खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूरि रहिओ स्रब ठांई ॥ (पन्ना १३५०)

भक्त कबीर जी के पदों में जितने संबोधन हैं उन सबका कोई न कोई प्रयोजन है। भक्त जी क्रांतिकारी थे। आपने अवतार-पूजा को अस्वीकार करते हुए भेखों का खंडन किया तथा कहा :

गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग ॥
ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग ॥ (पन्ना ४७६)

उस समय समाज की प्रचलित यह धारणा कि काशी में मरने से मुक्ति तथा मगहर में

मरने से अवगति होती है, का खंडन करने के लिए आप अपने देहांत से कुछ समय पहले मगहर (यह स्थान गोरखपुर से पश्चिम दिशा की तरफ २२ किलोमीटर की दूरी पर तथा ज़िला संत कबीर नगर में स्थित है) में जाकर रहे और यहीं पर संवत् १५७५ में आप जी ने शरीर त्यागा। काशी में भक्त कबीर जी का स्थान 'कबीर चौरा' के नाम से प्रसिद्ध है तथा 'लहिर तलाउ' पर भी आप जी के नाम का मंदिर है। भक्त जी को भक्ति-धारा वाले काशी में प्रचार के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। यह वो हिस्सा था जहां कर्मकांडियों का सबसे बड़ा गढ़ था। यहां नाथों का योग भी पहले अपने पांव नहीं जमा सका था।

वाममार्गियों के मत की परछाईं भक्त कबीर जी के कार्य-क्षेत्र पर पड़ती थी, इसलिए जो हठधर्मिता तथा संघर्ष भक्त जी में दिखाई देता है वो अन्य किसी निर्गुणी भक्त में नहीं मिलता। भक्त जी की बाणी का प्रभाव समस्त उत्तरी-भारत में बहुत पड़ा। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में गुरु साहिबान के बाद भक्त जी की बाणी अन्य सब भक्तों से ज्यादा है। भक्त जी ने समाज को अच्छे काम करने तथा परमात्मा की भक्ति करने के लिए प्रेरित किया और सदैव उसकी भक्ति तथा नाम-सिमरन में लिवलीनता ही मांगी। आप जी ने कहा है :

किनही बनजिआ कांसी तांबा किनही लउग सुपारी ॥
संतहु बनजिआ नामु गोबिद का ऐसी खेप हमारी ॥ (पन्ना ११२३)

उन्होंने संसार के लोगों को केवल सुख ही मांगने से गुरेज़ करने के लिए कहा है, क्योंकि ज्यादा सुख ही दुखों-कलेशों का कारण बनते हैं। आपने स्पष्ट शब्दों में कहा :

सुखु मांगत दुखु आगै आवै ॥
सो सुखु हमहु न मांगिआ भावै ॥ (पन्ना ३३०)

गुरबाणी के आशय के अनुकूल आपने गृहस्थ में रहकर नाम-सिमरन की प्रेरणा दी कि मनुष्य को बेकार बैठ कर, मांग कर खाने से काम करके जीवन-यापन करना चाहिए तथा उसका नाम-सिमरन करते रहना चाहिए। उन्होंने फोकट आडंबरों को त्यागने पर ज़ोर दिया। भक्त जी की बाणी में स्पष्टता तथा सरलता है। आप मन की अवस्था को नि:संकोच बयान करते हैं :

भूखे भगति न कीजै ॥
यह माला अपनी लीजै ॥ (पन्ना ६५६)

आप जी ने मनुष्य को विनम्र-भाव में रहने की प्रेरणा दी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये पांचों ही मनुष्य के शत्रु हैं जिन पर काबू पाना अति आवश्यक है। भक्त जी का मानवीय संदेश देखने योग्य है :

कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का तजि मन का अभिमानु ॥
ऐसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥
(पन्ना १३७२)

कितना स्पष्ट एवं सरल उपदेश है मानवता के लिए! ऐसा स्पष्ट बयान अन्य कहीं कम ही देखने को मिलता है। आप जी की बाणी की विशेषता यह है कि कोई नियम या विचार मनुष्य-मात्र पर ठोसा नहीं गया बल्कि उसका मार्गदर्शन ही किया है; उस समय की प्रचलित कुरीतियों के बारे में सहज भाव से सुचेत किया है। आप जी ने केवल सीध (दिशा) ही नहीं दी बल्कि व्यवहारिक जीवन में खुद उस मार्ग को अपनाया भी। आपकी समाज को देन अद्वितीय है।

(अनुवादक-- स. गुरप्रीत सिंघ भोमा)

भक्त कबीर जी : एक अद्वितीय व्यक्तित्व

-डॉ सुनील कुमार*

हिंदी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्ति-काल के नाम से जाना जाता है। भक्ति-काल को सामान्यत: दो वर्गों में विभक्त किया गया है-- निर्गुण धारा एवं सगुण धारा। पुन: इन दोनों धाराओं की दो-दो शाखाएं हैं। निर्गुण धारा के अंतर्गत 'ज्ञानाश्रयी शाखा', 'प्रेमाश्रयी शाखा' है। सगुण धारा के अंतर्गत 'रामकाव्य' एवं 'कृष्णकाव्य' है। ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को 'संत', 'भक्त' आदि कहा जाता है। इस शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं-- भक्त कबीर जी।

भक्त कबीर जी का जन्म १३९८ ई और देहांत १५१८ ई में हुआ माना जाता है। 'बीजक' नाम से इनकी रचनाओं का संकलन इनके शिष्य धर्मदास द्वारा किया गया माना जाता है, जिसके तीन भाग हैं-- साखी, सबद और रमैणी। इसके अतिरिक्त बाबू श्याम सुंदर दास ने इनकी रचनाओं का संकलन 'कबीर ग्रंथावली' में किया है। इनकी रचनाओं में उपदेशों की प्रवृत्ति है, रहस्यवादी भावना है तथा भाषा प्रतीकात्मक है। इन सबके बावजूद भक्त कबीर जी द्वारा रचित एवं श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज उनकी ५३७ शबदों वाली बाणी को ही सर्वप्रमाणित माना गया है।

भक्त कबीर जी का प्रादुर्भाव ऐसे समय में हुआ जब समाज अनेक बुराइयों से ग्रस्त था; छुआछूत, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, मिथ्याचार और पाखंड का बोलबाला था; धार्मिक कट्टरता एवं संकीर्णता के कारण समाज का संतुलन बिगड़ रहा था तथा सामाजिक विषमता बढ़ती जा रही थी। उस समय किसी ऐसे महात्मा या समाज-सुधारक की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त इन कुरीतियों पर निर्भीकता से प्रहार कर सके और सदाचरण का उपदेश देकर सामाजिक समरसता की स्थापना करे। वस्तुत: भक्त कबीर जी ने इसी आवश्यकता की पूर्ति की।

भक्त कबीर जी यह स्वीकार करते हैं कि भवसागर से पार जाने का साधन भक्ति है। इस भक्ति के अभाव में ही मानव 'भवजल' में डूब जाता है।

भक्त कबीर जी में अनुभूति की सच्चाई एवं अभिव्यक्ति का खरापन विद्यमान था। वे अनुभवजन्य सत्य पर विश्वास करते थे न कि शास्त्रोक्त बातों पर। भक्त कबीर जी क्रांतिदर्शी व्यक्तित्व के स्वामी थे। प्रगतिशील चेतना उनमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे लीक छोड़कर चलने वाले महापुरुष थे। उन्होंने ऊंच-नीच तथा जात-पात के भेदों को नकारते हुए मानव-एकता की उद्घोषणा की।

भक्त कबीर जी ने गुरु की महत्ता पर सर्वाधिक बल दिया है। इसके अतिरिक्त सदाचार, नैतिकता, परोपकार, क्षमा, संतोष, सत्यभाषण आदि को उन्होंने श्रेष्ठ मानव के लिए आवश्यक माना है।

भक्त कबीर जी की बाणी-रचना का मुख्य उद्देश्य लोकहित था। समाज-सुधारक के

* सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, श्री अमृतसर-१४३००५

रूप में उन्होंने जिस उपदेशमूलक बाणी की रचना की उसके पीछे लोक-कल्याण की भावना निहित थी।

भक्त कबीर जी के बारे में डॉ. रामलखन राय का यह कथन कितना सटीक है-- "भक्त कबीर जी ने अपने दर्शन से न केवल भारतीय समाज को असाधारण रूप से प्रभावित किया, बल्कि अपनी उच्च कोटि की चिंतनशील और साधनामय अनुभूति से जनसामान्य के लिए आध्यात्मिकता का मार्ग भी प्रशस्त किया। भक्त कबीर जी का दर्शन मानवतावादी है, जिस पर कलम चलाना बड़े साहस का काम है।" नैतिक मूल्यों का क्षरण जिस तीव्रता से आज हो रहा है तथा मानवीय मूल्यों का जो विघटन समाज में दिखाई दे रहा है, उसके विषाक्त प्रभाव को दूर करने के लिए भक्त कबीर जी की आवश्यकता आज भी बराबर अनुभव की जा रही है। आज का समाज जिस धार्मिक विद्वेष के वातावरण में जी रहा है तथा हमारे समाज में जो उच्छृंखला दिखाई दे रही है, उसमें निश्चित तौर पर भक्त कबीर जी की शिक्षाएं अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकती हैं। ❁

कविताएं

ज़िक्रे-नानक

सरज़मीने-हिंद का इक, गौहरे-नायाब तू।
मिश्अले-राहे-हिदायत, बेनियाज़े रंगो-बू।
तू कि ऐ नानक! जहाने-अमन का पैग़म्बर,
ज़िंदगी तेरी थी गोया, इक मुसलसल जुस्तजू।
तूने इक ओअंकार से, ताईद की कुर्आन की,
तेरी बाणी में भरे हैं, नग़माहाए अल्ला-हू।
नाम को ओढ़ा-बिछाया, नाम को पहना किया,
नाम की फेरी लगाई तूने, नानक कू-ब-कू।
किरत के उपदेश में तूने कहा, मिल कर छको,
धुंध मिटी चानण हुआ, परगट हुआ जो सतिगुरु।
इब्ने-आदम को वक़ारे-ज़िंदगी तूने दिया,
ख़िदमते-ख़ल्के-खुदा थी, एक तेरी आरज़ू।
आत्मा की ज्योति से, प्रकाश लेकर ज्ञान का,
तू उठा ऊंचा तो जा बैठा, खुदा के रू-ब-रू।
नाअरा-ए-तकबीर भी, तौहीद भी, उपनिषद भी,
सब सिमट कर हो गए हैं, एक लफ़्जे-वाहिगुरु।
तू कलंदर भी है, तू शाही भी है इक़बाल का,
राह तू, रहरौ भी तू, रहबर भी तू, मंज़िल भी तू।
राह तूने वो दिखाई है कि जो इस पर चला।
दो कदम चलकर ही उसने, मंज़िल को पा लिया।

-डॉ. नरेश, १६९, सेक्टर-१७, पंचकूला-१३४१०९

पंचम गुरुदेव

शहादत का जो पीते हैं जाम, अमर हो जाते उनके नाम।
युग युगांतर फैले कीर्ति, युग युगांतर करें प्रणाम।
तीर्थ बनते कर्म-स्थल उनके, बांटते सौगंधियां उनके काम।
लेते रहें जन-जन प्रेरणाएं, करते रहें सदैव शुभ काम।
रूह का रंग बने रूहानी, जब हम जाते उनके धाम।
दर-घर ऊंचा उनका सबसे, प्रणाम करे न थके अवाम।
पंचम गुरुदेव सर्व-श्रद्धेय हमारे, इतिहास के पन्नों में ऊंचे उजियारे।
कुर्बानी की ज्योति जले लासानी, महा महान सदैव सब प्रकारे।
"सिरु धरि तली" के जयकारे, सत्य किये जो आदि गुरुदेव पुकारे।
राजसत्ता झुका न पाई, सिकुड़े जब्र-जुल्म हैं सियारे।
गुरुदेव पर रोम-रोम बलिहारे! गुरुदेव पर रोम-रोम बलिहारे! ❁

-डॉ. सुरिंदरपाल सिंघ, पत्तण वाली सड़क, पुराना शाला, गुरदासपुर, मो. ९४१७१-७५८४६

पंजाबी लोकनायक : महाराजा रणजीत सिंघ

*-डॉ. गुरचरन सिंघ**

पंजाबियों के अच्छे भाग्य हैं कि उनको स. रणजीत सिंघ जैसा शूरवीर, निष्पक्ष तथा सर्वसांझा महाराजा मिला। उनकी छाप समकालीन समाज पर तो पड़नी ही थी, आने वाली पीढ़ियां भी उनके कार्यों को याद करके गर्व से सरशार हो जाती हैं। इतिहासकारों की नज़र में महाराजा रणजीत सिंघ एक आदर्श सम्राट थे। वे गहरी दृष्टि से लोक-मनों की बात जान लेते थे। वीरता में उनकी कीर्ति के कारण ही उनकी तुलना मिस्र के पाशा महिमत अली, फ्रांस के सम्राट निपोलियन बोनापार्ट, मैसूर के सुलतान टीपू तथा प्राचीन भारत के सिरमौर योद्धाओं तथा योग्य शासकों-- सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य एवं समुंद्र गुप्त मौर्य के साथ की जाती है। प्रसिद्ध प्रबंधक के रूप में वे शेरशाह सूरी तथा अकबर महान से भी कम नहीं थे। वे हातिमताई जैसे दयालु एवं दानी थे। चाहे वे धार्मिक सिद्धांतों की बारीकियां जानने वाले व्यक्ति नहीं थे मगर श्री गुरु ग्रंथ साहिब एवं अकाल पुरख में उनकी अगाध श्रद्धा थी।

पंजाब की भौगोलिक तथा भावुक, राजनीतिक तथा सामाजिक एकता और सांझ के निर्माता थे महाराजा रणजीत सिंघ। वे हर मन के दिलदादा थे। उनके जैसा एशिया भर में कोई सम्राट नहीं था। इतिहास लेखक मारशमैन के अनुसार, "कुसतुनतुनीआ तथा पीकिंग के मध्य वाले क्षेत्र में उनके जैसा विचित्र एवं विशेष कोई अन्य व्यक्ति नहीं था।"[१] सर लैपल ग्रिफ़न महाराजा रणजीत सिंघ के देहांत के कई वर्ष बाद लिखता है : "उसका नाम पंजाब में हर किसी की जुबान पर चढ़ा हुआ है। उसकी तसवीर अभी भी हर झुग्गी तथा हर महल में यादगार के तौर पर संभाली हुई है।"[२] फ़कीर अज़ीज-उद-दीन की अंश में से पाकिस्तान में बसते सैयद वहीद-उद-दीन ने महाराजा की लोक-प्रसिद्धि, उनकी सर्वप्रियता, उनके गुणों, उनकी जीतों का लेखा-जोखा करते हुए गर्व से लिखा है : "रणजीत सिंघ लोगों के जहन में अभी भी वैसे ही जिंदा हैं, जैसे वे अपने भौतिक जीवन के दौरान जिंदा रहे थे।"

महाराजा रणजीत सिंघ का हरमन-प्यारा चित्र विजयी व दयालु बादशाह का उभरता है। महाराजा रणजीत सिंघ की दयालुता उनकी शाही आन-शान तथा राज्य-शक्ति को बहुत पीछे छोड़ गई थी, जो अभी तक लोक-मनों में घर किए बैठी है।

महाराजा रणजीत सिंघ की शख़्सियत पंजाबी साहित्य का अभिन्न अंग बन चुकी है। वर्तमान समय में महाराजा रणजीत सिंघ के बारे में उपन्यास विधा की रचनायें, जिनके लेखक ज्ञानी तरलोक सिंघ, ज्ञानी सोहण सिंघ सीतल, ज्ञानी भजन सिंघ हैं, काफी चर्चित रहीं। प्रिं. संत सिंघ (सेखों) ने नाटकों में, स. विधाता सिंघ तीर ने काव्य में तथा दर्जनों ही अन्य

***१०/११, सुभाष कालोनी, ज़ीरा, जिला फिरोजपुर (पंजाब)*

कवियों ने भी महाराजा रणजीत सिंघ की शख़्सियत को काव्य द्वारा अमर किया है। अगर महाराजा रणजीत सिंघ के समकालीन या निकट-समकालीन लेखकों तथा कवियों की अनुभूति से अंदाज़ा लगाएं तो महाराजा रणजीत सिंघ का अक्स और भी ज्यादा बलवान लगता है।

शाह मुहम्मद महाराजा रणजीत सिंघ की वीरता के गीत गाता हुआ लिखता है :

महांबली रणजीत सिंघ होइआ पैदा,
नाल ज़ोर दे मुलक हलाइ गिआ।
मुलतान, कशमीर, पशौर, चंबा,
जंमू, कांगड़ा, कोट निवाइ गिआ।
होर देश लद्दाख ते चीन तोड़ीं,
सिक्का आपणे नाम चलाइ गिआ।
शाह महंमदा जाण पचास बरसां,
अच्छा रज्ज के राज कमाइ गिआ।[३]

पंजाब के लोगों की अंग्रेजों के साथ जब १८४५ ई में जंग हुई तो जंग में अच्छे अगुओं की कमी के कारण भी कवि महाराजा रणजीत सिंघ को याद करता हुआ कहता है :

मुठ मीटी सी पंजाब दी जी,
इन्हां खोल्ह दित्ता अज्ज पाज यारो।. . .
शाह मुहंमदा इक सरकार बाझों
फौजां जित्त के अंत नूं हारीआं ने।[४]

इतिहासकारों ने महाराजा रणजीत सिंघ की फौजी शक्ति का सही अंदाजा लगाते हुए निर्णय दिया कि उन्होंने अफगानों का मुंह मोड़ कर पंजाब को राजनीतिक शक्ति तथा सिक्खों को कौम का रुतबा दिया। जनरल गार्डन ने ठीक ही लिखा था कि "सिक्ख अब शक्ति तथा स्वै-विश्वास से मिले-जुले एक ऐसे निपुण सम्राट के अधीन एक कौम बन चुके थे, जिसने खालसा को सलतनती ताकत का धारणी बनाकर इस बात का सदा के लिए फैसला कर दिया था कि पंजाब पर राज्य भविष्य में सिक्खों ने करना है न कि अफगानों ने।"[५]

महाराजा रणजीत सिंघ की सबसे बड़ी देन शांति तथा भाईचारा कायम करना था। उनके राज्य में लोग सुखी बसते थे, चोर-डाकू सिर तक नहीं उठाते थे; औरतें निर्भय होकर चल-फिर सकती थीं। महाराजा सबकी इज्जत के रक्षक थे। जाफ़र बेग ने लिखा है :

अलफ आखि तूं सिफत सरकार वाली,
सिंघ पंथ विचों होइ धुजाधारी।
जिहदे राज कुआरीआं राह तुरीआं,
डरदे छेड़दा नाहिं को खौफ मारी।[६]

कवि साहिब सिंघ, जाफ़र बेग, निहाल सिंघ, गणेश दास आदि ने महाराजा की वीरता, कुशल राज्य-प्रबंध तथा दयालु स्वभाव को अपने काव्य का विषय बनाया है। कवि साहिब सिंघ के अनुसार महाराजा रणजीत सिंघ चढ़दी कला के प्रतीक थे :

सद ही कमर कसी हम देखी,
कबहूं ना सुसती मुख पर पेखी।
(महान कोश, पृष्ठ ८६३)

उनकी सैनिक-प्रशंसा में सारे कवि एकमत हैं। कवि निहाल सिंघ 'वार' में लिखता है :

कलानौर, फिलौर, पिशौर ताईं,
टक्के देंवदे नी मारे हूरिआं दे।
पैण भाजड़ां चीन मचीन ताईं,
काबल कंबदा जर्रा-जर्रा नाल खंघूरिआं दे।४।

जाफ़र बेग लिखता है :

जाफर बेग सिंघां खैबर बस्स कीता,
पईआं भाजड़ां विच कंधार सारी।२।
जाफर बेग सरदार दी धमक डाढी,
टक्के आउंदे चीन मचीन ताईं।३।

इस तरह महाराजा रणजीत सिंघ की विजयों के बारे में उपमा करने में कवि गणेश

दास भी पीछे नहीं :

प्रिथम पंजाब जीत, नीत मैं प्रबीन भए,
कांगड़े का कोट, देवी दीओ हरखाइ के।
अटक पटक दे सु, लीनी देर कीनी नाहि,
मार सुलतान, कशमीर लीआ धाइ के।
पाछे करी देर सु, पशौर मार लए हए,
अब चढ़े सभ सिंघ मन में खुलसाइ के।
(फतहिनामा गुरू खालसा जी)

ऐसे शक्तिशाली पंजाबी महाराजा का जब २७ जून, १८३९ को देहांत हुआ तो पंजाब की हालत एक विधवा स्त्री जैसी हो गई। महाराजा रणजीत सिंघ सचमुच ऐसे बादशाह थे जिनके आगे बड़े-बड़े राजा झुकते थे। सारे पंजाब का राज्य-भाग तथा सुहाग महाराजा रणजीत सिंघ के साथ ही खत्म हो गया। जाफ़र बेग ने ठीक ही लिखा है :

जाफर बेग जहान विच पिआ रौला,
अज्ज उलट गई हिंद दी पातशाही।[७]

महाराजा रणजीत सिंघ के देहांत से सम्बंधित पंजाबी के उच्च कोटि के विद्वान, खोजी, गुरसिक्ख शख़्सियत डॉ. हरमान सिंघ 'शान' द्वारा महाराजा की दूसरी देहांत-शताब्दी पर लिखी कविता के कुछ शेयर भी बड़े चरितार्थ होते हैं :

गज्जदा लाहौर विच कंबदा नेपाल, चीन,
पंज दरिआवां दा सी माणा रणजीत सिंघ।
जित्त के पशौर जिस काबल नाकाबल कीता,
कदे ना पंजाब ने भुलाणा रणजीत सिंघ।
खखड़ी दी डलीआं दे वांग पाटी कौम सारी,
इक्को लड़ी विच तां परोइआ रणजीत सिंघ।
मोइआ रणजीत नहीं सी होइआ पंजाब रंडा,
ताहीओं लोकीं कूकदे जां मोइआ रणजीत सिंघ।
(पंजाब ते शेरि-पंजाब, पृष्ठ १४)

संदर्भ-सूची :

*१) **Marshman, J.C., History of India from the Earliest period to the close of Lord Dalohousie's Administration, 3 vols., London, 1867, vol. I, P. 39.***

*२) **Griffin, Sir Lepel, Ranjit Singh, 1905, P. 88.***

३) शाह मुहंमद, सय्यद, जंग सिंघां ते फरंगीआं, बंद नं. ५ तथा जंगनामा शाह मुहंमद, संपादित भाषा विभाग, पंजाब, पृष्ठ २

४) जंगनामा शाह मुहंमद, भाषा विभाग, पंजाब, १९८८, पृष्ठ ३०-३१

*५) **Gordon, General Sir John J.H., The Sikhs, London, 1904, P. 86-87***

६) जाफ़र बेग, सीहरफी सरकार दी, बंद नं. १

७) जाफ़रबेग, सीहरफी सरकार दी, १८५५ ई की हस्तलिखित, बंद नं. २१, देखें डॉ. हरनाम सिंघ शान, पंजाब ते शेरि-पंजाब, पृष्ठ १०

(अनुवादक-- स. गुरप्रीत सिंघ भोमा)

अनुरोध

'गुरमति ज्ञान' सिक्ख इतिहास तथा गुरबाणी में दर्ज शिक्षाओं द्वारा मानव समाज का मार्गदर्शन करती धार्मिक पत्रिका है। गुरबाणी के सम्मान को मुख्य रखते हुए 'गुरमति ज्ञान' के पाठक साहिबान से अनुरोध है कि वे 'गुरमति ज्ञान' को पढ़ने के बाद इसे न तो रद्दी में बेचें तथा न ही ऐसी जगह पर रखें जहां इसकी उचित संभाल न हो सके। पत्रिका को यदि घर में संभालकर रखने की उचित व्यवस्था न हो तो पढ़ने के बाद इसे किसी मित्र, रिश्तेदार आदि को दे दें अथवा किसी गुरुद्वारा साहिबान या पुस्तकालय में पहुंचा दें।

-संपादक।

सरकार खालसा एवं मौत की सज़ा समकालीन गवाहियों के आधार पर

-डॉ. हरनाम सिंघ शान*

शेरे-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ (१७८०-१८३९) ने अपने राज्य का नाम 'सरकार खालसा' रखा हुआ था। इस स्वतंत्र तथा विशाल राज्य की परिधि दो लाख मुरब्बा मील से ऊपर तक फैली हुई थी तथा इसकी हदें उत्तर दिशा की ओर तिब्बत (चीन), दक्षिण की ओर सिंध (पाकिस्तान), पूरब दिशा की ओर दरिया सतलुज (भारत) तथा पश्चिम की ओर दर्रा ख़ैबर (अफ़गानिस्तान) को छू रही थीं।

उनका आदर्श इस इतने बड़े तथा विस्तृत क्षेत्र, इतने अहम एवं लंबे-चौड़े मैदानी और पहाड़ी इलाके में एक ऐसे राज्य की स्थापना थी जो पंचम पातशाह श्री गुरु अरजन देव जी के निम्नलिखित शुभ वचनों को व्यवहारिक रूप देकर ठीक अर्थों में 'हलेमी राज' होने तथा कहलवाने का गौरव प्राप्त कर सके :

हुणि हुकमु होआ मिहरवाण दा ॥
पै कोइ न किसै रञाणदा ॥
सभ सुखाली वुठीआ इहु होआ हलेमी राजु जीउ ॥
(पन्ना ७४)

इस अनूठे किंतु बड़े कठिन आदर्श की पूर्ति के लिए जो नीयत एवं नीति उन्होंने अपनाई थी, उसका मूल केंद्र-बिंदु सिक्ख सिद्धांत तथा परंपरा पर आधारित निष्पक्षता, उदारता और दयालुता जैसे सद्गुणों का व्यवहारिक प्रयोग था।

उन्होंने अपने एक विदेशी करिंदे मेजर लारेंस को १८३० ई में कोट कांगड़ा का प्रबंध सौंपते समय जो लिखित हुक्म, सलाह तथा नसीहत दी थी, उसमें यह बात भी बड़े साफ़ लफ़्ज़ों में इस प्रकार अंकित थी :

". . .The guilty as the innocent I spared and those whose hands were raised against myself, have met my clemency."

(मैं दोषियों को निर्दोषों की तरह ही बख़्श देता रहा हूं तथा जिन आदमियों के हाथ मेरी अपनी जाति के विरुद्ध भी उठे थे, उन पर भी मैंने दया ही की है।)-- ***Lawrence, Adventures of an officer in the Punjab, London-1846, Vol. I, P. 63.***

शेरे-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ का यह सुनहरी कथन एक अकट ऐतिहासिक सच्चाई का ही लिखित एवं तसदीक किया हुआ बयान है।

उस समय का अंग्रेज कमांडर-इन-चीफ़ सर हैनरी फ़ेन, दा एडीकांग कैप्टन फ़ेन, जो सन् १८३७ में पंजाब में विचरण करता रहा, अपने रोज़नामचे द्वारा बताता है : **"Ranjeet among his subjects has the character generally of a kind generous master and one of the best princes that has ever reigned in India. As evidence of his being a really good and amiable man,**

**६०५, सेक्टर १६-डी, चंडीगढ़-१६००१५*

may be cited his kindness to children (two or three of whom he has seen crawoling about the durbar) and the fact of his never having, since he conquered the country, put a man to death for even the most heinous crimes. At all events it is certain that without the punishment of death this chief yet manages to keep his wild people in perfect subjection."

(महाराजा रणजीत सिंघ का स्वभाव तथा चरित्र अपनी प्रजा में आम तौर पर दयालु तथा उदार मालिक वाला है। वे हिंदोस्तान पर राज्य कर चुके सबसे बढ़िया बादशाहों में से एक हैं। उनकी वास्तव में ही एक अच्छे तथा मिलनसार मनुष्य होने की पहचान, उनकी बच्चों के प्रति स्नेह-भावना (जिनमें से दो-तीन तो दरबार में रींगते उन्होंने स्वयं देखे थे) तथा किसी घोर अपराध के दोषी को भी कभी मृत्यु-दंड न देने वाली असलियत भरती है। और चाहे कुछ भी हो, यह बात तो यकीनन है कि वे मौत की सज़ा दिए बिना ही अपने बेकाबू लोगों को पूरे वश में रखे रखते हैं।-- ***(Fane, Five Years in India, 1835-1839, London, 1842, P. 95)***

फ़ेन से लगभग दो वर्ष पहले अर्थात् १८३५ में पंजाब में विचरते रहे आस्ट्रीयन साइंसदान (वैज्ञानिक) बैरन हीऊगल ने भी इस तथ्य की गवाही भरते हुए अपने सफ़रनामे में लिखा था : **"The Maharaja is always unwilling to inflict the punishment of death or mutilation."** (महाराजा रणजीत सिंघ किसी को भी मृत्यु या अंग काटने की सज़ा देने के लिए कभी भी सहमत नहीं होते।)-- ***Hugel, Travels in Cashmere and The Punjab, London, 1845, P. 317.***

ईस्ट इंडिया कंपनी का डॉक्टर मैगरेगर भी उनको हद से ज्यादा सखी तथा कृपालु मानते हुए और उपरोक्त विचार की पुष्टि करते हुए बताता है : **He was an oxception of oriental monarchs and never wantonly inflicted either capital punishment or mutilation."** (महाराजा साहिब पूरब के बादशाहों से विशेष तथा विलक्षण थे। उन्होंने मृत्यु या अंग काटने की सज़ा बेपरवाही या बदमस्ती के खुमार में भी कभी किसी को नहीं दी।)-- ***'M' Gregeor, The History of the Sikhs, London, 1846, Vol. I, P. 281.***

लुधियाना की बरतानवी एजेंसी के एक अंग्रेज अफ़सर हैनरी प्रिंसप ने उनके स्वभाव तथा राज्य-प्रबंध की यह विशेषता उनके जीते-जी लिख-छाप कर १८३४ ई में प्रकाशित भी कर दी थी कि **"There is no ferocity in his disposition and he has never taken life, even under circumstances of aggravated offence."** (उनके स्वभाव में वहशियत या बेरहमी का तो नामो-निशान भी नहीं। उन्होंने गंभीर तथा संगीन जुर्म की हालत में भी, किसी मुज़रिम की जान कभी नहीं गंवाई।)-- ***Prinsep, Origin of The Sikh Power in The Panjab, etc. London, 1834, P. 143.***

उसी एजेंसी के एक अन्य अफ़सर कैप्टन मरे ने उनके इसी निरीक्षण को दोहराते हुए यह भी बताया था कि **"Humanity indeed or rather a tenderness for life was a trait in the character of Ranjit Singh. There is no instance of his having wantonly imbued his hands in blood."** (उदारता या मानव जीवन के लिए हार्दिक स्नेह महाराजा रणजीत सिंघ के चाल-चलन का नि:संदेह एक

विशेष लक्षण था। इस बात की कोई मिसाल कहीं भी नहीं मिलती कि उन्होंने अपने हाथ कभी भी, लापरवाही में किसी के खून से रंगे हों।)-- *Murray, History of British India with continuation, comprising, war in the Punjab, London 18, P. 61.*

स. खुशवंत सिंघ के अनुसार **"In the history of the world, it would be hard to find another despot who never took life in cold blood, yet built as large an empire as Ranjit's."** (समूह संसार के इतिहास में किसी भी अन्य ऐसे तानाशाह का जिक्र ढूंढना कठिन होगा, जिसने किसी को भी बेरहमी से न मारा हो और जिसने फिर भी इतनी बड़ी शहंशाही कायम कर ली हो जितनी कि महाराजा रणजीत सिंघ ने की थी।)-- *Khushwant Singh, Ranjit Singh : Maharaja of the Punjab, London, 1962, P. 8.*

"शेरे-पंजाब तो अपने शत्रुओं तथा विरोधियों पर भी दया करते एवं कराते रहे हैं। और तो और, उनके कट्टर दुश्मन भी जब उनके सामने पेश किए जाते थे तो वे ज्यादातर कृपा एवं क्षमा से ही काम लेते थे।"-- *Lawrence's Observation on Ranjit Singh in the Calcutta Review, August, 1844.*

जनरल गार्डन का यह निरीक्षण ऐसे शुभ व्यवहार तथा घटनाक्रम की ही पुष्टि करता है : **"Generous to the Vanquished, it never being his policy to reduce any one to desperation."** (वि पराजित हुए आदमी के लिए बड़े उदार थे। किसी भी आदमी को निराशता की हद तक पहुंचा देने वाली नीति, उनकी कभी भी नहीं हुई।)-- *Garden, The Sikhs, London, 1904, P. 111.*

"पेशावर के यार मुहम्मद तथा दोस्त मुहम्मद एवं भिंबर के सुलतान ख़ान से किया गया व्यवहार ऐसे बरताव की कुछ अविस्मरणीय उदाहरणें हैं।"-- *Latif, History of the Punjab, Calcutta, 1891, P. 473; Hasrat, Life and Times of Ranjit Singh, Nabha, 1977, P. 345 etc.*

वास्तव में वे दोषियों को सख़्ती की जगह बख़्शिश के बोझ तले दबा देते थे और वे लोग उसके असर में अपने आप ही सुधर जाते थे।

जहां तक फतहि करके अधीन कर लिए विरोधियों का सम्बंध है, महाराजा रणजीत सिंघ की नीति तथा उस पर व्यवहारिक प्रयोग उक्त स्वभाव का ही एक अन्य चमत्कारी पक्ष था। उसमें हुई शानदार सफलता का जिक्र करते हुए प्रिं: सीताराम कोहली ने लिखा है : **"Ranjit Singh's Policy of subjugating other principalities succeeded because be took care to provide liberal compensation. Some of the princes were glad to accept Jagirs and live a secure, retired life; others more active, to serve, under the Maharaja and merge their forces with the state army."**

(महाराजा रणजीत सिंघ की अन्य राजाओं को अधीन कर लेने की नीति बड़ी सफल हुई थी, क्योंकि महाराजा रणजीत सिंघ ने उनके पहले मालिकों तथा उनके वारिसों को बड़ी खुलदिली से निवाजने की ओर खास ध्यान दिया था। कुछ राजा तथा नवाब तो जागीरें प्रवान करने और उनके द्वारा सुखी तथा सुरक्षित जीवन बिताने पर ही खुश हो गए थे। उनमें से जो ज्यादा चुस्त थे वे महाराजा के अधीन सेवा करने तथा अपनी फौज उनकी शाही सेना में ही शामिल कर देने में प्रसन्न हो गए।)

–Kohli, Sunset of The Sikhs Empire, New Delhi, 1967, P. 7.

तभी तो उक्त लारेंस भी यह लिख गया था : **Members of deposed ruling families may be seen in Delhi and Kabul in a state of penury, but in the Punjab there is not to be seen a single ruling family whose territories may have been canquered by Ranjit Singh and which may have been left unprovided for by him. Not only the Sikh ruling houres, but those of other faiths too were provided for by him with equal munificence."** (तख़्त से उतरे राज-घरानों के सदस्य दिल्ली तथा काबुल में अति गरीबी तथा बेबसी में विचरण करते नज़र आते हैं, परंतु पंजाब में कोई भी ऐसा घराना नज़र नहीं आता जिसके राज्य-क्षेत्र को महाराजा रणजीत सिंघ ने फतहि करने के उपरांत बड़ी जागीर या पैंशन से निवाज कर ऐसी बेबसी तथा रुसवाई से बचा न लिया हो। उन्होंने केवल सिक्ख राज-घरानों को ही नहीं, अन्य मतों के सब ऐसे ख़ानदानों को भी उसी तरह की शहाना फ़िआज़ी से निवाज दिया था।) *--Lawrence, as quoted in Maharaja Ranjit Singh First Death Centenary Memorial, London, 1846, P. 208.*

लाहौर के सरदार चेत सिंघ, कसूर के नवाब कुतुबदीन, कांगड़ा के राजा संसार चंद तथा मुलतान के नवाब मुजफ्फरदीन आदि के साथ की ऐसी मेहरबानी तथा बख़्शिश इसी हकीकत की खुलेबंद तसदीक करती है। *(उदाहरणस्वरूप देखें : सोहण लाल, उमदा-तु-तवारीख, वही, दफ़्तर ३, पन्ना ९३; Gough, The Sikhs and The Sikh Wars, London 1897, P. 35-36; Latif, History of The Punjab, Calcutta, 1891, P. 350-351; Maharaja Ranjit Singh Centenary Memorial, P. 25.)*

जहां तक महाराजा का अपने पर हुए जानलेवा वारों का सम्बंध है, उनके बहुत निकटता से देखने तथा बयान करने वाला आसबोर्न लिखता है : **"He is mild and merciful as a ruller . . . except in actual open warfare, he has never been known to take life, though his own has been attempted more than once."** (वह एक हुक्मरान के तौर पर नरम-दिल तथा रहम-दिल है। . . . उसने खुले मैदान में हुई लड़ाई के अलावा कभी किसी को जान से नहीं मारा, चाहे उनकी खुद की जान लेने के लिए एक से ज्यादा यत्न हो चुके थे।)-- *Osborne, The Court & Camp of Ranjit Singh, London, 1840, P. 38.*

फ़कीर घराने के विद्वान वारिस सैयद वहीद-उद-दीन ने मानो इसी हकीकत की पुष्टि करते हुए आधुनिक ही लिखा है : **"There was practically no capital punishment which even modern government have not been able to abolish. It was not awarded even when an attempt was made on the life of the Maharaja himself."** (उनके राज्य में मौत की सज़ा, जो नवीन सरकारें अभी भी हटा नहीं सकीं, व्यवहारिक रूप में बिलकुल नहीं थी। यह तो जब उनकी अपनी जान पर भी वार हुआ था तब भी सम्बंधित मुजरिम को नहीं दी गई थी।)-- *Waheed-ud-din, The Real Ranjit Singh, Karanchi, 1965, P. 38.*

(अनुवादक-- स. गुरप्रीत सिंघ भोमा)

महाराजा रणजीत सिंघ

*-डॉ मनमोहन सिंघ**

शेरे-पंजाब महाराजा रणजीत सिंघ केवल पंजाब में ही नहीं बल्कि सारे संसार में सम्मान की दृष्टि से जाने जाते हैं। महाराजा रणजीत सिंघ अपनी बहादुरी, न्यायप्रियता, समानता व धर्म-निरपेक्षता के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। इस महान राजा ने अपनी धाक तिब्बत से सिंध तक तथा खैबर से सतलुज तक कायम की और शासन किया। महाराजा की शख़्सियत, चतुरता, मान-सम्मान व प्रशासन-कला ने आने वाली पीढ़ियों को भी मात दे दी।

महाराजा के अच्छे स्वास्थ्य का राज यह था कि वे सुबह चार बजे उठकर कुछ घंटे घुड़सवारी करते व पलटूनों का निरीक्षण करते। इसके बाद वे अपना दरबार लगाते व जरूरी फरमान जारी करते। महाराजा रात को जल्दी सो जाते। कहा जाता है कि जल्दी सोना व जल्दी जागना तंदरुस्ती के भेद हैं। महाराजा अमृत वेले स्नान करके श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ भी सुनते ताकि आत्मिक शांति बनी रहे।

महाराजा रणजीत सिंघ सभी को एक समान समझते व देखते थे। इस बात को कुछ लोग मज़ाक में कह देते हैं कि महाराजा सभी को एक आंख से देखते थे, क्योंकि महाराजा की एक आंख बचपन में चेचक के प्रकोप से खराब हो गयी थी। उनका सभी को एक आंख से देखना स्वाभाविक ही नहीं बल्कि उनकी सर्व-सांझीवालता की सूझ का सूचक था। महाराजा रणजीत सिंघ ने यह सिद्ध कर दिया कि प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार अपना भविष्य बनाने का अवसर दिया जायेगा। जाति-धर्म-रंग-रूप के कारण किसी को भी अन्याय नहीं मिलेगा। इस सिद्धांत को भारत के संविधान ने भी अपनाया है। महाराजा के सिद्धांतों ने आने वाली पीढ़ियों तक प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने में सहायता प्रदान की।

महाराजा के राज्य के समय एक बार अकाल पड़ गया तो महाराजा ने अन्न के भंडार खोल दिये व ढिंढोरा पिटवा दिया कि जिस भी चीज़ की किसी को जरूरत है वो आकर ले जाये। इस बात का एक मुसलिम बच्चे को पता लगा तो उसने अपने दादा से कहा कि चलो, हम भी अनाज ले आएं।

बच्चे के कहने पर दादा-पोता अनाज लेने चले गये। बूढ़ा व्यक्ति इतना कमज़ोर था कि वह अनाज उठाने में असमर्थ था। महाराजा रणजीत सिंघ यह सब देख रहे थे। महाराजा ने खुद अनाज उठाकर उस बूढ़े व्यक्ति के घर छोड़ दिया।

एक बार कुछ बच्चे एक बेरी के पेड़ पर पत्थर मारकर बेर तोड़ रहे थे। अचानक एक पत्थर महाराजा को लगा जो कि उधर से गुजर रहे थे। महाराजा ने बच्चों को सज़ा देने के बजाय पैसे दिये। साथी सेवक द्वारा कारण पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि "बेरी को पत्थर मारने से बेरी बच्चों को बेर देती है। एक पत्थर मुझे लगा तो मेरा भी फर्ज है कि मैं भी इन्हें कुछ न कुछ दूं।" जब तक महाराजा जीवित रहे वे राज्य के विस्तार व आम जनता की भलाई के कार्यों में लगे रहे। महाराजा रणजीत सिंघ ने अपनी ताकत का गलत

**८९७, फेज-८, साहिबजादा अजीत सिंघ नगर (मोहाली)-१६००६२*

इस्तेमाल नहीं किया। वे अपने आपको जनता का दास समझते थे। उनके सिक्कों पर 'अकाल सहाय' लिखा होता था। उन्होंने अपने सम्पूर्ण राज्य में कार्य-कुशलता बढ़ाने के लिए उसे चार प्रांतों में विभाजित किया हुआ था-- लाहौर, मुलतान पेशावर व कश्मीर। प्रत्येक प्रांत गवर्नर के अधीन होता था।

मुगलों ने सिक्खों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये, परंतु महाराजा रणजीत सिंघ ने मुगलों के प्रति बदले की कोई गलत भावना नहीं रखी। उन्हें हर प्रकार की आज़ादी दी व उन पर किसी प्रकार का विशेष टैक्स आदि नहीं लगाया गया, जैसा कि मुगल शासक करते थे। महाराजा ने अपने राज्य में हर धर्म के लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार पदवी आदि प्रदान की।

महाराजा रणजीत सिंघ २८ जून, १८३९ ई को इस संसार से सदा के लिए कूच कर गये थे।



कविता

प्रकृति का हर तत्व विशिष्ट

नभ अचरच से सोच रहा है, धरती कैसे हरियाई!
धरती सोचे नभ ने कैसे, नीली चादर फैलाई!
पर्वत सोचे सागर में, कैसे इतनी है गहराई!
सागर सोचे पर्वत ने, कैसे पाई यह ऊंचाई!
चंदा सोचे सूरज कैसे, करता जगती को रोशन!
सूरज सोचे पूर्ण चंद्र का, कैसा अद्भुत सम्मोहन!
जुगनू देख सितारे समझें, धरती पर चलते तारे!
जुगनू सोचें आसमान में, हम सब हैं कितने सारे!
अरुणोदय का सूर्य सोचता, क्यों सागर में लाली है!
सागर-जल में झिलमिल किरणें, कैसी छटा निराली है!
वृक्ष सोचते पवन परिश्रमी, बहती रहती लगातार!
पवन सोचती स्थित तरुवर में, कितना है धैर्य अपार!
भंवरे सोचें गुल-गुलशन में, कैसे आये रंग हज़ार!
फूल सोचते क्यों मंडराकर, ये भंवरे करते गुंजार!
मरुभूमि को ध्यान आ रहा, गुलशन की सुंदरता का!
गुलशन भी होता कायल, मरुभूमि की जीवटता का!
देख सरोवर नदिया सोचे, बड़ा शांत है इसका जल!
नदिया देख सरोवर सोचे, क्यों नदिया करती कल-कल!
कोयल सोचे आखिर किसने, मोर-पंख में रंग भरे!
मोर सोचता किसने कोकिल-कंठों में सुर मधुर भरे!
मृग विस्मित है हाथी ने, कैसे पाई यह देह विशाल!
हाथी लज्जा से भरता जब, देखे मृग की चंचल चाल!
नाग सोचता वनराजा में, कैसे आया इतना बल!
सिंह सोचता नागराज ने, कैसे पाया तीव्र गरल!
वीणा सोचे कैसे वेणु, एक फूंक से मन मोहे!
वेणु सोचे वीणा-तंत्री, कैसे सबको सम्मोहे!
पौष सोचता भीषण गर्मी, जेठ मास में क्यों पड़ती!
जेठ सोचता ठंड-सुरसरी, पौष मास में क्यों चढ़ती!
सावन-भादों सोच रहे है, क्यों बसंत मदमाता है!
फागुन सोचे मेघ कहां से, इतना जल भर लाता है!
हिमपर्वत के शैल चकित हैं, ज्वालामुख के शोलों पर।
ज्वालामुख का लावा विस्मित, जमे बर्फ के गोलों पर।
सारी कुदरत इक-दूजे को, देख-देखकर विस्मित है।
प्रकृति का हर तत्व स्वयं में, अनुपम गुण से सज्जित है।
जिसने की इनकी रचना, उस कृतिकार को नमस्कार!
कण-कणव्यापी पूर्णदक्ष, उस कलाकार की जय-जयकार!



-श्री प्रशांत अग्रवाल, ४०, बजरिया मोतीलाल, बरेली-२४३००३ (उ. प्र.)। मो : ०९४११६०७६७२

बाबा बंदा सिंघ बहादर : संक्षिप्त जीवन-वृत्तांत

*-डॉ मनजीत कौर**

गुरबाणी का पावन फरमान है :
जा तू मेरै वलि है ता किआ मुहछंदा ॥
तुधु सभु किछु मैनो सउपिआ जा तेरा बंदा ॥
(पन्ना १०९६)

परम पिता परमेश्वर की जिस पर अपार कृपा होती है उसे पूर्ण गुरु मिल जाता है और जिस पर पूर्ण गुरु की रहमत होती है उसे जीवन-युक्ति-मुक्ति, लोक-परलोक के समस्त सुख और यहां तक कि सर्वत्र में बसता वह परमेश्वर दिखाई देने लगता है, जिसके फलस्वरूप यह भाव हृदय में दृढ़ हो जाता है :
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई ॥ (पन्ना १२९९)

यह हकीकत है कि जब जुल्म तथा अत्याचार हद से बढ़ जाते हैं तब बदी की ताकतों का मुंह-तोड़ जवाब देने हेतु ईश्वर किसी ऐसे युगपुरुष को संसार में भेजता है जो पुन: मानवीय स्वतंत्रता को बहाल कर प्रेम, सद्भाव तथा शांति कायम कर सके। गुरबाणी का पावन फरमान है :
गुर बिनु घोरु अंधारु गुरू बिनु समझ न आवै ॥
गुर बिनु सुरति न सिधि गुरू बिनु मुकति न पावै ॥ (पन्ना १३९९)

अर्थात् पूर्ण गुरु के बिना अज्ञानता का अंधेरा दूर नहीं हो सकता। गुरु के बिना जीवन-युक्ति तथा मुक्ति सम्भव नहीं है।

जैसे पारस का स्पर्श पाकर लोहे जैसी धातु सोने में परिवर्तित हो जाती है वैसे ही सतिगुरु की संगत विकारी हृदयों को शुद्ध बना देती है। ठीक ऐसी ही मिसाल हमें बाबा बंदा सिंघ बहादर के जीवन से मिलती है। श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के दर्शन-मात्र से उनके जीवन में इंकलाबी मोड़ आया।

जन्म : बाबा बंदा सिंघ बहादर का जन्म १६ अक्तूबर, १६७० ई को कश्मीर के पुंछ रियासत में राज़ौरी नामक गांव में हुआ। उनके पिता एक राजपूत किसान थे, जिनका नाम रामदेव था। पिता ने बालक का नाम लछमण दास रखा। वे शिकार खेलने जाते थे। ऐसा माना जाता है कि एक बार उन्होंने एक गर्भवती हिरनी को अपने बच्चों सहित तड़प-तड़प कर मरते हुए देखा जिसका शिकार उन्हीं के तीर से हो गया था। इस घटना ने उन्हें विचलित कर दिया। लछमण दास ने वैराग्य धारण किया। एक योगी के शिष्य बनकर उनसे तंत्र-विद्या सीखी। अब वे माधोदास बैरागी के नाम से जाने जाने लगे। उन्होंने महाराष्ट्र में नांदेड़ नामक स्थान पर अपना मठ स्थापित कर लिया। वहां वे आने-जाने वाले व्यक्तियों को अपमानित तथा भयभीत करते। यह सिलसिला काफी वर्षों तक चलता रहा।

१७०८ ई में जब गुरु साहिब नांदेड़ पहुंचे तो माधोदास बैरागी ने अपनी तांत्रिक शक्तियां गुरु जी पर भी अजमानी चाहीं, परंतु उनकी कोई

**२/१०४, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४, मो: ९९२९७-६२५२३*

तंत्र-विद्या गुरु जी पर प्रभाव न डाल सकी। अहमद शाह बटालियन अपनी रचना 'तारीख-ए-हिंद' के एक अध्याय में लिखता है कि श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के साथ माधोदास का निम्नलिखित वार्तालाप हुआ :

माधोदास : आप कौन हो?
श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी: जिसे तुम जानते हो।
माधोदास : मैं क्या जानता हूं?
श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी: इस पर विचार करो।
माधोदास : क्या आप श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी हो?
श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी: हां।

माधोदास ने विनती की कि मैं आपकी शरण में हूं, अत: आपका 'बंदा' हूं। गुरु-मिलाप ने उनके जीवन में महान् क्रांति ला दी।

गुरु की शरण में आते ही गुरु साहिब ने उन्हें अमृत-पान करवा कर खालसा पंथ में शामिल किया तथा उनका नाम बाबा बंदा सिंघ बहादर रखा। उन्हें उनका कर्त्तव्य-बोध करवाया कि देश में लाखों बेगुनाहों पर हो रहे अत्याचारों, जुल्मों के चलते तुम्हारा वैराग्य धारण करना शोभनीय नहीं है और ऐसे कार्य एक वीर, अदम्य साहसी पुरुष को शोभा नहीं देते। बाबा बंदा सिंघ बहादर ने गुरु-संगत में रहकर कुछ दिन खालसा पंथ की मर्यादा, गुरबाणी तथा गुर-इतिहास श्रवण किया। श्री गुरु अरजन देव जी, श्री गुरु तेग बहादर जी, बड़े साहिबजादों, छोटे साहिबजादों, गुरु के अन्य प्यारे सिंघों की अद्वितीय शहीदी-गाथाएं सुनकर उनका खून खौल उठा। यह कुदरत का नियम है कि प्रकृति न्याय करती है तथा न्याय चाहती है। प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करने वाले को उसका परिणाम भुगतना ही पड़ता है। इसी विचारधारा को श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने औरंगजेब को लिखे अपने पत्र 'जफ़रनामा' में स्पष्ट किया है :

चु कार अज़ हमह हीलते दर गुज़शत ॥
हलालस्सतु बुरदन व शमशीर दसत ॥

"जब समस्त उपाय असफल हो जाएं तो तलवार उठाना जायज़ है।" ऐसी ही परिस्थितियों में गुरु-आदेश पाकर ज़ालिमों का अंत करने हेतु बाबा बंदा सिंघ बहादर ने यही मार्ग अपनाया।

श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने उन्हें आशीष देकर अपने तरकश से पांच तीर तथा पांच मुख्य सिंघों के अलावा २० अन्य सिंघ भी सहायतार्थ दिए। बाबा बंदा सिंघ बहादर को खालसा फौज का जत्थेदार मनोनीत किया। एक नगाड़ा, ध्वज, कुछ हुकमनामे (बाबा बंदा सिंघ बहादर की सहायता करने हेतु सिक्ख संगत को आदेशस्वरूप) लिखकर साथ दिए। गुरुदेव के चरणों में नत्मस्तक हो, आशीर्वाद लेकर बाबा बंदा सिंघ बहादर ने पंजाब की ओर कूच किया। उनका मुख्य उद्देश्य ज़ालिमों को सोधना, मुगल राज्य की गुलामी को खत्म कर पंजाब की स्वतंत्रता को बहाल करना था।

पंजाब की ओर प्रस्थान करते ही गुरु जी द्वारा बख़्शे हुकमनामे पंजाब भर के सिक्खों को भेजे गए। फलस्वरूप जल्दी ही भारी गिनती में सिक्ख उनके पास पहुंच गए। बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सैनिक-शक्ति के साथ आर्थिक स्थिति को भी मज़बूत किया। शीघ्र ही बाबा जी की फौज की गिनती ४०००० तक पहुंच गई। फौज की विशेषता इतिहासकारों के अनुसार यह थी कि उनमें सिक्खों के अतिरिक्त हिंदू, मुसलमान, राजपूत, जाट तथा अनेक तथाकथित दलित वर्गों के लोग भी मुगलों के अमानवीय अत्याचारों से त्रस्त होकर ज़ालिमों का नाश करने हेतु बाबा बंदा सिंघ बहादर के झंडे के नीचे एकत्र हो गए थे।

२६ नवंबर, १७०९ ई को बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सिंघों की फौज लेकर सरहिंद की ओर

कूच किया। सर्वप्रथम सेना 'समाणा' नामक स्थान पर पहुंची, जहां श्री गुरु तेग बहादर जी को शहीद करने वाले जल्लाद जलालुद्दीन का निवास था। सेना ने २४ घंटे के अंदर ही समाणा पर कब्जा कर लिया। तत्पश्चात् बाबा जी ने शाहबाद, ठसका, मुस्तफाबाद आदि शहरों पर खालसई निशान साहिब झुला दिये। खालसा फौज का विजयाभियान जारी रहा। उन्होंने 'कपूरी' के कसबे पर कब्जा किया। कदामुद्दीन को उसकी करनी का फल देकर बाबा बंदा सिंघ बहादर ने 'सढौरा' की ओर कूच किया, जहां के शासक ने श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के प्रिय शिष्य 'पीर बुद्धू शाह' की हत्या की थी। उसे उसकी करनी का फल चखाकर बाबा जी ने मुखलिस खां के किले को फतहि किया।

१२ मई, १७१० ई को सरहिंद के सूबेदार वज़ीर ख़ान के नेतृत्व वाली मुगल फौज तथा बाबा बंदा सिंघ बहादर की कमान वाली सिक्ख फौज का 'चपड़चिड़ी' नामक स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। 'सरहिंद' वो स्थान है जहां श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के जिगर के टुकड़े छोटे साहिबजादों-- बाबा जोरावर सिंघ तथा बाबा फतह सिंघ को जालिम सूबेदार वज़ीर ख़ान ने दीवार में जिंदा चिनवा दिया था और इसी स्थान पर माता गुजरी जी ने आत्म-बलिदान दिया था। वज़ीर ख़ान को उसके जुल्मों की सजा देने की अभिलाषा हर सिक्ख के मन में थी। खालसा फौज ने मुगल फौज को बुरी तरह परास्त किया। वज़ीर ख़ान मारा गया और सरहिंद पूरी तरह खालसे के कब्जे में आ गया। गुरु परिवार के द्रोही सुच्चा नंद, जिसकी छोटे साहिबजादों को शहीद करवाने में विशेष भूमिका रही थी, की हवेली को भी मलबे का ढेर बना दिया गया।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने अत्याचारियों का अंत कर गुरु साहिब के उन वचनों को सत्य साबित कर दिखाया जो उन्होंने औरंगजेब को 'जफ़रनामा' में लिखे थे :

चिहा शुद कि चूं बच्चगां कुशतह चार ॥
कि बाकी बिमांदा सत पेचीदह मार ॥

अर्थात् क्या हुआ अगर तूने मेरे चार पुत्रों को यातनाएं देकर शहीद कर दिया है, अभी 'कुंडली वाला सांप' अर्थात् मेरा खालसा जीवित है।

सरहिंद फतहि के पश्चात् बाबा बंदा सिंघ बहादर पश्चिम की ओर अग्रसर हुए तथा जलालाबाद, जलंधर, रियाड़की आदि शहरों को जीतते हुए लाहौर के निकट जा पहुंचे। अब लगभग सारे पूर्वी पंजाब में सिक्खों का राज्य स्थापित हो चुका था। अपने जीते हुए इलाकों में साथ-साथ सिक्ख राज्य-प्रबंध की व्यवस्था करना बाबा बंदा सिंघ बहादर की दूरदर्शिता की परिचायक है।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सरहिंद के पूर्व दिशा में स्थित सढौरा तथा नाहन के मध्य अपनी राजधानी बनाई और इसे 'लोहगढ़' का नाम दिया। इसी स्थान पर बाबा जी दीवान लगाते और लोगों की दुख-तकलीफें सुनते तथा उनका निवारण करते।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने खालसा राज्य का एक सिक्का भी जारी किया। इसकी कीमत मुगलों के सिक्के से ज्यादा रखी गई।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने अपनी मुहर बनवाई। उस पर खुदवाया :

देगो तेगो फतहि ओ नुसरित बे-दिरंग।
याफत अज नानक गुरु गोबिंद सिंघ।

अर्थात् श्री गुरु नानक देव जी और श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी की कृपा से देग, तेग, फतहि और बे-रोक बरकतें हासिल कीं।

बाबा बंदा सिंघ बहादर के नेतृत्व में स्थापित यह पहला खालसा राज्य था जो कि पूर्ण रूप से धर्म-निर्पेक्ष था। उन्होंने विनम्रता का दामन नहीं, छोड़ा, समस्त प्राप्तियों को सदैव गुरु की बख़्शिश ही माना। इस राज्य का प्रमुख उद्देश्य विश्व-शांति कायम करना था। बाबा जी की दूरदर्शिता एवं गहरे चिंतन का एक विलक्षण उदाहरण 'जागीरदारी प्रथा' का उन्मूलन करना था। उस समय अधिकांश जागीरदार मुसलमान थे जो लगान एकत्र करने के बहाने आम जनता पर बहुत जुल्म करते थे। बाबा जी ने सिक्खों द्वारा जीते गए इलाकों में भूमिवाह किसानों को भूमि का मालिक बना दिया। गरीब, मज़दूर, हल चलाने वाले भी जमींदार बन गए। इससे पंजाब की राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ आर्थिक व्यवस्था में भी बहुत सुधार आया। पंजाब में आर्थिक समृद्धि एवं खुशहाली बाबा बंदा सिंघ बहादर की ही देन कही जाए तो कोई अतिकथनी नहीं होगी।

फरवरी, १७१३ ई को दिल्ली तख़्त पर बैठे बादशाह फरुख्सियर ने बाबा जी और सिक्खों के खिलाफ दमन-चक्र चलाया। आखिर १७१५ ई अप्रैल महीने में बाबा बंदा सिंघ बहादर को गुरदास नंगल की गढ़ी में भारी संख्या वाली मुगल फौजों ने घेर लिया। यह घेरा ८ महीने तक जारी रहा। ७ दिसंबर, १७१५ ई को बाबा जी को ७४० सिंघों सहित गिरफ्तार कर लिया गया और लोहे के पिंजरे में बंद कर, जुलूस के रूप में दिल्ली भेजा गया। जेल में बंद कर ६ महीने तक कठोर यातनाएं दी गईं। फिर ज़ालिमों द्वारा कत्लेआम शुरू हुआ। लगभग १०० सिक्खों को प्रतिदिन शहीद किया जाता। पहले उन्हें धर्म-परिवर्तन हेतु कहा जाता, मना करने पर अनेक यातनाएं देकर शहीद कर दिया जाता। गुरु के सिक्ख हंसते-हंसते शहीदी का जाम पी गए। १० जून, १७१६ को बाबा बंदा सिंघ बहादर को शहीदी-जाम पिलाया गया। उन्हें शहीद करने से पहले उनके हाथ में कटार दी गई और उनके ५ वर्षीय सुपुत्र अजै सिंघ को गोद में बैठाकर कत्ल करने को कहा गया। इंकार करने पर ज़ालिमों ने बाबा जी के नाखून उखाड़े, गर्म जंबूरों से शरीर का मांस नोचा, उनकी दोनों आंखें निकाल दी गईं। जब्र एवं जुल्म की इंतहा कि उनके बेटे का धड़कता हुआ दिल निकाल कर बाबा जी के मुंह में ठूंसा गया। उधर जब्र की हद हो रही थी, इधर सब्र की हद हो रही थी। शूरवीर योद्धा, शांतचित्त, वीर, परोपकारी, संयमी, विलक्षण व्यक्तित्व के मालिक बाबा बंदा सिंघ बहादर ने उफ तक न की। अमृत की अथाह शक्ति तथा गुरु साहिब की अपार बख़्शिशों का सदका बाबा बंदा सिंघ बहादर खालसा पंथ की आन-बान-शान को बरकरार रखते हुए अमर शहीदी का जाम पी गए।

ऐसे युगपुरुष, महान् क्रांतिकारी, अद्बितीय शहीद, सिक्ख पंथ की उज्ज्वल हस्ती, महान कर्मयोगी, बेजोड़ योद्धा, परोपकारी खालसा पंथ के पहले जरनैल बाबा बंदा सिंघ बहादर का विलक्षण जीवन रहती दुनिया तक सिक्ख पंथ की अगुआई करता रहेगा। ऐसे महापुरुष को शत्-शत् नमन्!



लासानी शख़्सियत के मालिक शहीद बाबा बंदा सिंघ बहादर

-स. बिक्रमजीत सिंघ*

बाबा बंदा सिंघ बहादर की अगुआई में खालसा पंथ ने पंजाब में एक ऐसा सिंघ-नाद पैदा किया कि जुल्मी मुगल राज्य के महल ढहने लगे। लोगों को डराने वाले जालिम मुगल सूबेदार खुद भयभीत होकर कांपने लगे। सिक्खों ने थोड़े समय में ही पंजाब के राज्य, समाज और अर्थव्यवस्था को बदल कर रख दिया। इन समूची प्राप्तियों का श्रेय बाबा बंदा सिंघ बहादर को जाता है।

बाबा बंदा सिंघ बहादर का जन्म १६ अक्तूबर १६७० ई को 'पुंछ' जिले के एक छोटे-से गांव में हुआ। उसके पिता का नाम 'रामदेव' था, जो कि एक साधारण किसान था और भारद्वाज जाति से संबंधित था। बाबा बंदा सिंघ बहादर का बचपन का नाम लछमण दास था। उसे बचपन से ही शिकार खेलने का शौक था एक दिन उसने एक हिरनी का शिकार किया। जब हिरनी का पेट फाड़कर देखा तो उसमें दो बच्चे थे। हिरनी के मरने से वे बच्चे भी तड़प-तड़प कर मर गए। यह सब देखकर लछमण दास बहुत उदास हो गया। उस पर इस घटना का गहरा असर पड़ा। इस घटना ने उसे अंदर तक झकझोर दिया। उसका न केवल शिकार से मन उपराम हो गया बल्कि उसने गृहस्थ जीवन से भी मुंह मोड़ लिया।

इस समूचे घटनाक्रम के पश्चात वह साधुओं की एक टोली के साथ मिलकर भारत के तीर्थों के भ्रमण के लिए रवाना हो गया। कुछ समय बाद वह नासिक पहुंच गया जहां उसका मेल एक योगी औघड़ नाथ के साथ हुआ। औघड़ नाथ एक तांत्रिक था जो जंत्र-मंत्र एवं तंत्र-विद्या में निपुण था। लछमण दास उसका चेला बन गया। उसने औघड़ नाथ की तन-मन से सेवा शुरू कर दी। औघड़ नाथ के सम्पर्क में आने से वो 'माधो दास' बन गया। औघड़ नाथ ने अपना एक ग्रंथ भी माधो दास के हवाले कर दिया। कुछ समय पश्चात माधो दास ने अपना एक आज़ाद डेरा गोदावरी नदी के किनारे नंदिड़ नामक स्थान पर बना लिया। उस इलाके के लोगों में उसकी बहुत प्रसिद्धि हो गई।

दूसरी तरफ पंजाब में श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के छोटे साहिबज़ादे को सूबेदार वजीर ख़ान (सूबा-सरहिंद) ने सरहिंद में दिसंबर, १७०४ ई को जिंदा दीवार में चिनवा कर शहीद कर दिया। इस दिल कंपा देने वाली घटना ने सिक्खों के मन पर गहरा असर डाला। इस घटना के प्रतिक्रम से सिक्खों के मन, दिल और दिमाग में मुगल हकूमत के विरुद्ध गुस्से और नफ़रत की आग भड़क रही थी।

बेशक श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी इस महान शहीदी साके के बाद भी अडोल रहे परंतु उन्होंने दोषियों को उनके किए की सज़ा देने का निश्चय कर लिया था। इस कार्य के लिए उन्होंने सिक्खों को मानसिक और जत्थेबंदक तौर पर तैयार किया और फिर जालिमों पर हमला करने के लिए वक्त का इंतजाम करने लगे। सिक्खों की

***S/o S. Ranjeet Singh, 2946/7, Bazar Loharan, Chowk Lashmansar, Sri Amritsar. M : 9478896372**

रहनुमाई करने के लिए गुरु साहिब ने सितंबर, १७०८ ई को नांदेड़ में गोदावरी नदी के किनारे बहुत ही विलक्षण अंदाज में माधो दास को चुना।

कलगीधर दशमेश पिता ने माधो दास को 'अमृत' छकाया और उसका नाम 'बंदा सिंघ' रखा। इतिहास में वह 'बाबा बंदा सिंघ बहादर' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाबा बंदा सिंघ बहादर को गुरु जी ने पंजाब की तरफ कूच करने का हुक्म दिया। श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी ने बाबा बंदा सिंघ बहादर को पांच तीर, खंडा और नगाड़ा भी दिया। पंथ प्रकाश में लिखा है :

बंदे गुर खंडा दयो लयो उनें गल पाइ।
खालसो देख सु विटरिओ तिन खंडो लया छिनाइ।

बाबा बंदा सिंघ बहादर के साथ गुरु जी ने पांच सिंघ-- भाई बिनोद सिंघ, भाई दया सिंघ, भाई रण सिंघ, भाई काहन सिंघ, भाई बाज सिंघ बाबा जी की सहायतार्थ भेजे।

बाबा बंदा सिंघ बहादर अक्तूबर, १७०८ के आस-पास पंजाब के लिए रवाना हुए। दिल्ली से पंजाब की तरफ रवाना होते ही लोग बाबा बंदा सिंघ बहादर के साथ इकट्ठा होना शुरू हो गए। जल्द ही हज़ारों सैनिक उनके अधीन इकट्ठे हो गए।

सरहिंद पर हमले के लिए मैदान तैयार : जीतों के एक लंबे सिलसिले के बाद सिक्ख अपने मुख्य निशाने सरहिंद पर ज़ोरदार हल्ला बोलने के लिए तैयारियां कर रहे थे। बाबा बंदा सिंघ बहादर के लिए भी यह एक इम्तहान की घड़ी थी। मौके की नज़ाकत को देखते हुए उसने सरहिंद पर हमला करने से पहले सिक्खों के एक और शक्तिशाली जत्थे (खरड़-बनूड़ के इलाके के बीच) को अपने साथ मिला लिया जिससे सिक्खों की जंगी ताकत में और बढ़ोतरी हो गई।

दूसरी तरफ बाबा बंदा सिंघ बहादर की ताकत को देखकर सूबेदार वज़ीर ख़ान कांप गया। उसने जंग होने का अनुमान लगाते हुए जंग के लिए तैयारियां शुरू कर दीं। उसने अपने मित्रों तथा अन्य राजा-रजवाड़ों को बुला लिया और जेहाद का नारा लगा दिया। उसने बारूद और अन्य हथियार इकट्ठा कर लिए। जब वज़ीर ख़ान को यकीन हो गया कि वह सिक्खों को पछाड़ सकेगा तो उसने लगभग २० हज़ार की फौज और गाज़ियों समेत सिक्खों के तूफान को रोकने के लिए अपने कदम आगे बढ़ाए।

डॉ. गंडा सिंघ और स. रतन सिंघ (भंगू) के अनुसार यह युद्ध १२ मई, १७१० ई को सरहिंद से १३ कोस की दूरी पर चपड़चिड़ी के मैदान में हुआ, जो कि खरड़ और लांडरा के बीच एक छोटा-सा गांव है।

जब वज़ीर ख़ान की फौजें सामना करने के लिए आगे बढ़ीं तो बाबा बंदा सिंघ बहादर ने भी अपने कमांडरों को आगे बढ़ने का हुक्म दिया और खुद इस समूची जंगी कार्यवाही का नियंत्रण करने के लिए एक ऊंचे स्थान पर बैठे निगरानी करने लगे। जंग के पहले पड़ाव में दोनों फौजों का पलड़ा भारी रहा। बाबा बंदा सिंघ बहादर जल्द ही अपनी सेना की अगली कतारों में आ गया।

स. सोहण सिंघ इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लिखते हैं-- "तब बंदा उठा, जैसे भूखा शेर अपनी गुफा में से निकला हो और बिजली की तरह विरोधी सेना पर टूट पड़ा।"

बाबा बंदा सिंघ बहादर की हिम्मत और हौसले से प्रभावित हुए सिक्ख एक साथ विरोधी सेना पर टूट पड़े। हमला इतना ज़ोरदार था कि विरोधी सेना के पांव उखड़ गए। खूनी ज़ंग भयानक दृश्य सृजित कर रही थी। इतिहासकारों के मुताबिक बाबा बंदा सिंघ बहादर की कमांड

में लड़ रहे बाबा फतहि सिंघ और वज़ीर ख़ान आमने-सामने हो गए। बाबा फतहि सिंघ ने तलवार के एक ही वार से वज़ीर ख़ान का सिर धड़ से अलग कर दिया। ऐसे लगा जैसे सिक्खों ने उसका कर्ज़, ब्याज के साथ वापिस चुका दिया हो। बाबा बंदा सिंघ बहादर ने छोटे साहिबजादों की शहीदी का बदला वज़ीर ख़ान ले लिया। शाही फौज में भगदड़ मच गई। सिंघ विजय के परचम लहराते हुए सरहिंद की ओर बढ़ने लगे।

सरहिंद पर कब्जा : अगले दिन (१३ मई, १७१० ई) सिक्ख फौज सरहिंद में दाख़िल हुई। देखते ही देखते बाबा बंदा सिंघ बहादर ने ज़ुल्मो-सितम की नगरी सरहिंद को मलबे के ढेर में बदल दिया। समूचा सरहिंद शहर खंडहर नजर आ रहा था। सब दोषियों को चुन-चुन कर सजाएं दी गईं। वज़ीर ख़ान के महलों में गरीबों को लूट कर जमा किया बहुत सारा धन बाबा बंदा सिंघ बहादर के हाथ लगा जो उन्होंने आम जनता में बांट दिया। १४ मई, १७१० ई को बाबा बाज सिंघ को सरहिंद का गवर्नर और बाबा आली सिंघ सलौदी को डिप्टी गवर्नर बना दिया गया। इसी तरह सामाणा शहर का गवर्नर बाबा फतिह सिंघ को बनाया।

सरहिंद पर मुकम्मल कब्ज़ा करने के बाद बाबा बंदा सिंघ बहादर मलेरकोटला की तरफ बढ़ा। नवाब का बाबा जी के साथ मुक़ाबला न करने के कारण इस शहर को कोई नुकसान नहीं पहुंचा। इसके बाद बाबा बंदा सिंघ बहादर ने 'लोहगढ़' को अपनी राजधानी बनाया।

बाबा बंदा सिंघ बहादर अब एक बड़ी शक्ति बन चुका था। उसके पास सिक्खों की भारी फौज भर्ती हो चुकी थी।

सिक्का जारी करना: बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सिक्ख राज्य की निशानी को पक्का करने के लिए श्री गुरु नानक देव जी और श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के नाम पर सिक्का जारी किया, जिस पर 'फारसी' में शब्द उकरे हुए थे :

सिक्का ज़द बर हर दो आलम तग़ि नानक
वाहिद असत फ़तहि गोबिंद सिंघ शाहि-शाहान
फ़जलि सच्चा साहिब असत।

बाबा बंदा सिंघ बहादर ने सरकारी दस्तावेज सनद, प्रवानों इत्यादि के लिए एक मुहर बनवाई। उस मुहर पर ये शब्द थे :

देगो तेग़ो फ़तहि ओ नुसरति बे-दिरंग।
याफ़त अज़ नानक गुरू गोबिंद सिंघ।

अर्थात् देग, तेग, जीत, सेवा, निरालम, गुरु नानक-- गोबिंद सिंघ से पाई।

जीत का सिलसिला जारी रखते हुए बाबा बंदा सिंघ बहादर ने जुलाई, १७१० ई में गंगा और यमुना के मैदानी इलाकों पर भी कब्ज़ा कर सिक्ख निशान फहरा दिया। अक्तूबर, १७१० तक किला भगवंत राय और भीलेवाल भी सिक्ख फौजों के कब्जे में आ गए।

सिक्खों की बढ़त को देखते हुए हिंदोस्तान का बादशाह बहादुर शाह भयभीत हो चुका था। उसने सिक्खों के कब्ज़े वाले इलाकों को छुड़वाने के लिए खुद पंजाब की तरफ कूच किया। हालात के मद्देनज़र सिक्खों को कुछ पीछे हटना पड़ा। बाबा बंदा सिंघ बहादर के साथ सिक्ख 'लोहगढ़' के किले में आ टिके। शाही सेना ने किले को घेर लिया। बाबा बंदा सिंघ बहादर पहाड़ों की तरफ रवाना हो गया। इसी दौरान बाबा बंदा सिंघ बहादर ने पंथ के दुश्मन राजा भीम चंद को मार मुकाया।

१८ फरवरी, १७१२ को बहादुर शाह की मृत्यु हो गई। दिल्ली का बादशाह 'फरुख्सियर' बना। उधर बाबा बंदा सिंघ बहादर ने अपनी

ताकत को फिर से संगठित किया और कई इलाकों पर पुन: कब्जा कर लिया। १७१२ ई को उसने सरहिंद और लोहगढ़ फिर जीत लिए। बटाला और कलानौर पर विजय प्राप्त कर शमस खां को मार डाला। अंत गुरदास नंगल की कच्ची गड़ी में बाबा बंदा सिंघ बहादर तथा उसके साथी कई सिंघ मुगल फौज के घेरे में आ गए। यह घेरा लगभग आठ महीने तक रहा। घेरा लंबे समय तक होने के कारण खाद्य-पदार्थों की कमी खलने लगी। सिक्ख सिपाही भूख-प्यास से तड़पने लगे।

बाबा बंदा सिंघ बहादर को लगभग ७३७ साथियों सहित गिरफ़्तार कर लिया गया। ५ मार्च, १७१६ ई को सिक्ख कैदियों का कत्लेआम शुरू हुआ। लगभग १०० सिक्खों को रोज़ाना कत्ल किया जाता। सिक्ख अजेय भावना के साथ मृत्यु का स्वागत करते और हंसते-हंसते शहीद होते।

लगभग तीन महीने तक घोर यातनाएं देने के बाद ९ जून, १७१६ ई को बाबा बंदा सिंघ बहादर को और उनके साथियों को किले में से बाहर लाया गया। जुलूस की शक्ल में कुतुबमीनार के पास ख़्वाजा कुतुबदीन बख्तियार काकी के रोजे के पास पहुंचाया गया। बहुत-से चश्मदीद गवाहों के मुताबिक बाबा बंदा सिंघ बहादर की शहादत इस प्रकार हुई :--

बाबा बंदा सिंघ बहादर को शहीदी जाम पिलाने से पूर्व उनके लगभग चार वर्ष के बेटे अजै सिंघ का कत्ल किया गया तथा उसका धड़कता हुआ दिल बाबा जी के मुंह में जबरदस्ती डाला गया। उसके बेटे की आंतें निकालकर उनका हार बाबा जी के गले में डाला गया। फिर जल्लादों ने उसकी आंखों को निकाला, हाथ-पैर काट डाले, जंबूरों से मांस नोचा और अंत में बाबा जी के सिर को धड़ से अलग कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। सिक्खों का पहला हुक्मरान शहीद हो गया।

यह शहीदी अपने आप में अद्वितीय थी। वैसे तो सारा सिक्ख इतिहास शहीदियों से भरा पड़ा है, परंतु बाबा बंदा सिंघ बहादर की शहीदी सिक्ख इतिहास में ही नहीं बल्कि संसार के समूचे इतिहास में रौंगटे खड़े करने वाली है।



उपहार ऐसा जो जीवन भर याद रहे

यह बात हर एक आम व खास व्यक्ति के मन को कचोटती रहती है कि वो अपने मित्रों, सम्बंधियों को यदि उपहार दे तो क्या दे? किसी के जन्म-दिन आदि या किसी विशेष दिवस पर किसी को कुछ भेंट किया जाए तो ऐसा उपहार हो जिसे स्वीकार करने वाला जिंदगी भर याद रखे। इसके लिए अब ज्यादा सोचने और चिंता करने की जरूरत नहीं है। जीवन भर का उपहार है-- 'गुरमति ज्ञान'। उपहार भी ऐसा कि जब हर माह आपके मित्र आदि के घर पर जाकर डाकिया 'गुरमति ज्ञान' की प्रति थमाएगा तो आपका मित्र हर माह आपका शुक्रिया करता नहीं थकेगा। आप अपने मित्र या किसी सम्बंधी को केवल १००/- रुपये में उपहारस्वरूप 'गुरमति ज्ञान' का आजीवन सदस्य बना दीजिए और हासिल कीजिए अपने मित्र की जीवन भर की खुशियां। यह सौदा बेहद सस्ता एवं लाभकारी रहेगा। आज ही मनीआर्डर या बैंकड्राफ्ट के जरिए चंदा भेजकर अपने मित्र या सम्बंधी को 'गुरमति ज्ञान' का आजीवन सदस्य बनाकर उसे इस बहुमूल्य 'उपहार' से निवाजें।

-संपादक।

सुखमनी साहिब में गुरु-शिष्य का आध्यात्मिक करार

*-स. रमेश सिंघ**

पांचवें गुरुदेव श्री गुरु अरजन देव जी द्वारा रचित एवं सर्वाधिक पढ़ी जाने वाली बाणी है-- 'सुखमनी साहिब', जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब में पन्ना २६२ से २९६ तक अंकित है। सुखमनी साहिब में प्रभु-नाम की महिमा गाई गई है। गुरु जी ने प्रभु-नाम को 'सुखों की मणि' कहा है और इसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। इस बाणी में २४ सलोक कौर २४ असटपदियां हैं। प्रत्येक असटपदी में पहले एक सलोक, फिर आठ पदों वाली असटपदी और हर पद में दस पंक्तियां हैं। सलोक में पूरी असटपदी का सार अंकित है। प्रथम असटपदी के दूसरे पद के आरंभ में दो अतिरिक्त पंक्तियां हैं ('रहाउ' की), जिनमें समस्त सुखमनी साहिब का सार है। इसका अर्थ इस प्रकार है : "प्रभु का अमृतमयी नाम सुखों की जगमगाती मणि है और यह नाम भक्त-जनों के हृदय में सदैव निवास करता है।"

सुखमनी साहिब की १८वीं असटपदी के पहले दो पदों में श्री गुरु अरजन देव जी ने गुरु और सिक्ख (शिष्य) के बीच का करारनामा प्रस्तुत किया है जो आध्यात्म मार्ग पर अग्रसर होने की चाहत रखने वालों के लिए सुंदर मार्गदर्शक है। जैसे कोई ठेकेदार से मकान बनवाने का ठेका देते समय एक अनुबंध करता है जिसमें दोनों पक्षों (मकान मालिक और ठेकेदार) को अपने-अपने दायित्व का पालन करने की शर्तें लिखी होती हैं और यदि दोनों पक्ष ईमानदारी से अपना-अपना दायित्व पूरा करें तो तय समय में सुंदर मकान बन कर तैयार हो जाता है, इसी प्रकार श्री गुरु अरजन देव जी ने 'गुरु' और 'शिष्य' की ओर से पूरी की जाने चाली शर्तों का वर्णन इस आध्यात्मिक करारनामे में किया है। गुरु जी ने इस असटपदी के पहले पद में गुरु द्वारा निभाए जाने वाले दायित्वों की चर्चा की है :

सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल ॥
सेवक कउ गुरु सदा दइआल ॥
सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै ॥
गुर बचनी हरि नामु उचरै ॥
सतिगुरु सिख के बंधन काटै ॥
गुर का सिखु बिकार ते हाटै ॥
सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देइ ॥
गुर का सिखु वडभागी हे ॥
सतिगुरु सिख का हलतु पलतु सवारै ॥
नानक सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै ॥
(पन्ना २८६)

सतिगुरु (प्रभु) अपने शिष्य की पालना के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। शरीर का पालन-पोषण करने के लिए प्रभु ने मनुष्य को (माता-पिता के अलावा) शारीरिक बल-बुद्धि प्रदान की है। इनका थोड़ा-सा प्रयोग करके ही वह स्वयं के लिए रोटी, कपड़ा और मकान पा सकता है। प्रभु सदैव दयालु हैं, कृपालु हैं, हर हाल में वो अपने सेवक पर दया ही करते हैं। सुख हो

** C-131, Sonari West, Jamshedpur-831011, mo. 96318-21636*

या दुख, खुशी हो या गमी, मान हो या अपमान, इन सब हालातों में शिष्य के लिए प्रभु का संदेश छिपा होता है। सुख है, खुशी है, मान-सम्मान है, तो शिष्य को सब्र-संतोष, धन्यवाद का पाठ सीखना है और यदि दुख है, ग़म है, अपमान है, तो शिष्य को धैर्य, सहन-शक्ति, विनम्रता का पाठ सीखना है।

गुरु अपनी संगति में शिष्य को हरि-नाम की पढ़ाई सिखाते हैं। जब शिष्य गुरु के वचनों को गाता-पढ़ता-सुनता है तो उसको सुमति प्राप्त होती है, विवेक जागृत होता है; उसे अच्छे-बुरे की पहचान होने लगती है; उसे यह एहसास होने लगता है कि यदि मैं शुभ कर्म नहीं करता तो मेरे इंसान होने का कोई अर्थ नहीं। इस प्रकार गुरु शिष्य के मन को जगा कर उसकी भूलों से अवगत करा कर उसे कुमार्ग से सुमार्ग पर अग्रसर कर देते हैं।

सतिगुरु शिष्य को मोह-माया के बंधनों से मुक्त करा देते हैं। जैसे-जैसे वह गुरु की संगति में हरि-नाम का जीवन पाता है उसे पांच चोरों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) के खेल का ज्ञान होता है और उसे सद्बुद्धि आ जाती है कि मेरा जीवन बर्बाद हो जायेगा यदि मैंने इन पांच चोरों का संग न छोड़ा। जैसे-जैसे शिष्य का मन विकारों से निकलता है उसके मन में गुरबाणी में निहित प्रभु की महिमा अर्थात् प्रभु के गुण प्रवेश करने लगते हैं और मन में सद्गुणों का समावेश होने लगता है। नाम-धन गुणों का धन है। यह गुरु-कृपा से प्राप्त होता है। शिष्य जितनी गुरु की आज्ञा मानेगा उतना ही वह गुरु-कृपा का पात्र बनता जाएगा। नाम-धन पाकर शिष्य संतोषी हो जाता है।

दुनिया का धन हमारे मन में मैल (लालच) पैदा करता है और हमारे दुर्भाग्य का कारण बनता है।

गुरु, शिष्य का वर्तमान और भविष्य दोनों संवार देते हैं। गुरु, शिष्य को अपने कलेजे से लगाकर रखते हैं। शिष्य को जीने की वो कला प्राप्त हो जाती है जिसका आधार शुभ कर्म होते हैं, जिसमें मैं-मेरी नहीं होती, जिसमें सब अपने लगते हैं, जिसमें सबके भले की भावना होती है।

यह तो था 'करारनामे' में गुरु का दायित्व, जो गुरु पूरी तत्परता से, हर हाल में पूरा करने को कटिबद्ध रहता है। दूसरी ओर, गुरु जी शिष्य का दायित्व बताते हैं :

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥
गुर की आगिआ मन महि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै ॥
हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥
मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥
तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी ॥
तिस कउ होत परापति सुआमी ॥
अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ ॥
नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥

(पन्ना २८६)

जो शिष्य गुरु के गृह (रज़ा) में रहेगा और गुरु की आज्ञा को शिराधार्य करेगा, गुरु उसके लिए कृपा-दृष्टि बनाए रखेंगे। गुरु का गृह है-- गुरु-उपदेश का दायरा, जिसमें शुभ कर्म करने व अवगुणों से बचने की आज्ञा है। यदि शिष्य अपने मन को विपरीत हालातों में भी गुरु-उपदेश से जोड़कर रखता है तो उसके मन में धैर्य, सहन-शक्ति, रज़ा में राजी रहना, आज्ञा मानन, सब्र-संतोष आदि दैवी गुण भर जाते हैं।

शिष्य सब कुछ पाकर, सब कुछ बन कर भी स्वयं को कुछ न जाने, कुछ न माने, प्रभु

का दास बना रहे और अपनी समस्त उपलब्धियों का श्रेय (मन से) प्रभु को देना सीख ले। यह तभी संभव हो पायेगा यदि वह सदैव हरि-नाम से जुड़ा रहेगा अर्थात् गुरु के उपदेश को सम्मुख रख कर सारे कार्य करेगा।

शिष्य सदा के लिए अपना मन गुरु को अर्पण कर दे अर्थात् अपनी मर्जी करना सदा के लिए खत्म कर दे, हर कार्य गुरु के उपदेशों के अनुसार करे। ऐसे सेवक के मन में कोई शिकायत न होगी, किसी के प्रति कोई वैर-विरोध, ईर्ष्या, वाह-वाह की भूख, अपमान का भय न होगा। पदार्थों की लालसा आदि से वह दूर रहने का भरसक प्रयत्न करेगा।

शिष्य अपना प्रत्येक काम पूरी मेहनत, लगन व ईमानदारी से करेगा। वह जीवन के जिस क्षेत्र में भी कार्य करेगा उसका जीवन सेवा में समर्पित होगा; सेवा करना उसका धर्म होगा। गुरु साहिब कहते हैं कि ऐसे सेवक को ईश्वर की प्राप्ति होगी, वह प्रभु का रूप हो जायेगा। भले ही दुनिया की नज़रों में वह अति निर्धन हो, उसे कोई जानता न हो, उसे कोई मान-सम्मान न प्राप्त हो, वास्तव में ऐसा सेवक सारी सृष्टि का राजा है, क्योंकि उसका मन प्रभु-नाम से ओत-प्रोत है, उसने अपने मन को जीत लिया है।

अंत में गुरु साहिब फरमान करते हैं कि जिस सेवक पर प्रभु की कृपा होती है वही गुरु की मति धारण करता है। गुरु जी यह भी बार-बार समझाते हैं कि प्रभु तो सदैव दयालु हैं कृपालु हैं, मेहरबान हैं, समदृष्टि रखते हैं, भेदभाव नहीं करते। कहने का तात्पर्य यह कि यदि शिष्य पूरी निष्ठा, भावना व सच्चे मन से गुरु के उपदेशों का पालन करने की कोशिश करेगा, वह अवश्य प्रभु-कृपा का पात्र बन जायेगा।

आज चारों ओर सत्य का अकाल है, झूठ का बोलबाला है, भ्रष्टाचार का दीमक समाज को खाए जा रहा है; प्रेम-प्यार, दया, क्षमा, विनम्रता, संतोष, भले की भावना, निष्काम सेवा जैसे दैवी गुण आलोप होते जा रहे हैं, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है, लोग त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, भाई, भाई का दुश्मन बनता जा रहा है; काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार ने पूरी तरह से मानव को अपनी पकड़ में लेकर जीवन को नरकमय बना दिया है। ऐसे में श्री गुरु अरजन देव जी द्वारा रचित बाणी 'सुखमनी साहिब' मनुष्य-मात्र के लिए, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म, वर्ण, क्षेत्र का हो, आशा की किरण है। आवश्यकता इस बात की है कि हम केवल इस बाणी का पठन-मात्र न करते रहें वरन् इसमें अंकित एक-एक सूत्र हमारा जीवन बने, हम इस पर चलने की कोशिश करें, तभी हमारा इहलोक और परलोक दोनों सुखमय हो जायेंगे।





भक्ति में मोक्ष के सामाजिक सरोकार

*-डॉ. अरविंद ऋतुराज**

चार्वाक को छोड़कर सभी भारतीय दर्शनों में मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। अलग-अलग दार्शनिक पद्धतियों में मोक्ष का नामकरण अलग-अलग किया गया है। हिंदू दर्शन इसे 'मोक्ष', 'परमानंद' या 'सच्चिदानंद' की प्राप्ति कहता है। बोध दर्शन में इसे 'निर्वाण' कहा गया है।

मोक्ष का अर्थ दुख का विनाश है। मोक्ष की अवस्था में जीव अपने यथार्थ स्वरूप को पहचान लेता है तथा प्रभु के साथ एकाकार हो जाता है। जीव का प्रभु के साथ एकाकार हो जाना ही मोक्ष है। मोक्ष की अवस्था में मात्र प्रभु की ही अनुभूति होती है तथा सभी भेदों का अंत हो जाता है।

मोक्ष के मार्ग में आने वाली सबसे बड़ी बाधा (आध्यात्मिक) अविद्या है। इस अविद्या के कारण अहंकार उत्पन्न होता है। यह अहंकार ही जीवों को बंधन-ग्रस्त कर देता है। बंधन की अवस्था में जीव को परमात्मा, आत्मा, जगत के वास्तविक स्वरूप का अज्ञान रहता है।

मोक्ष-प्राप्ति के कई रास्ते बताए गए हैं। उपनिषद् में मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान अथवा विद्या द्वारा ही संभव बतायी गई है। गीता में मोक्ष-प्राप्ति के तीन रास्ते बताए गए हैं-- ज्ञान-मार्ग, कर्म-मार्ग और भक्ति-मार्ग। गुरमति (सिक्ख विचारधारा) में जीव की मुक्ति के लिए किसी विशेष अवस्था की नहीं बल्कि गृहस्थ अवस्था में रहते हुए, दुनिया के सारे कार-विहार करते हुए प्रभु-नाम-सिमरन द्वारा मुक्त होने की बात की गई है।

'भक्ति' के चलते प्रत्येक व्यक्ति के लिए मोक्ष प्राप्त करने के रास्ते खुल गए। यह बात आम रूप से प्रचलित है कि ज्ञान-मार्ग का पालन सिर्फ विज्ञ-जन ही कर सकते हैं; कर्म-मार्ग का पालन सिर्फ धनवान व्यक्ति ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं, परंतु भक्ति-मार्ग अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित सबके लिए खुला है। यही कारण है कि समाज में भक्ति-मार्ग का दायरा काफी विस्तृत हो गया। इस प्रकार भक्ति-मार्ग से न केवल एक व्यक्ति बल्कि पूरे परिवार, पूरे समाज या फिर पूरी मानव जाति को मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

समाज के अधिक से अधिक लोगों को समेटने के चलते 'भक्ति' ने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। भक्ति आंदोलन का विकास दक्षिण भारत में तीसरी से दसवीं सदी में तेजी से हुआ। वैष्णव आलवार और शैव नयनार संतों ने भक्ति आंदोलन को घर-घर तक पहुंचा दिया। बाद में यह आंदोलन उत्तर भारत में आया। मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन सबसे बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति थी जिसके विकास का परिणाम हम आधुनिक भारत में भी देख सकते हैं।

**सहायक प्रोफेसर, गुरु गोबिंद सिंघ धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी यूनीवर्सिटी, पटियाला-१४७००२, मो ९४६५०-४१४८६*

भक्ति आंदोलन में सबके लिए मोक्ष की बात कही गई। इसमें जाति आदि के भेदभाव का नामोनिशान नहीं था, यहां तक कि महिलाएं भी इसमें समान रूप से शामिल हो सकती थीं। भक्तनी अंदाल और भक्त कबीर जी, भक्त रविदास जी, भक्त सैण जी आदि भक्ति आंदोलन के महान संत बने।

भक्ति आंदोलन ने बुराइयों में लिपटे मध्यकालीन भारतीय समाज के लिए मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया। इतिहासकार विपिन चंद्र के मुताबिक, मध्य काल में दक्षिण भारत में बौध धर्म और जैन धर्म दकियानूस एवं पुराणपंथी हो चुके थे और निरर्थक अनुष्ठानवाद में लिप्त हो गए थे जिसमें शरीर को कष्ट देने के उद्देश्य से अत्यधिक संयम और तप पर बल दिया जाता था। वे लोगों की भावनात्मक और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में समर्थ नहीं रह गए थे। यही कारण है कि दक्षिण भारत में आलवार और नयनार संतों का भक्ति आंदोलन तेजी से बढ़ा।

उत्तर भारत में सामाजिक स्थितियां अलग थीं। हर्ष के बाद कई राजपूत साम्राज्य स्थापित हुए। ब्राह्मणों और राजपूतों के बीच एक ऐसा गठबंधन बन गया जिसने सबकी मोक्ष की बात करने वाले भक्ति आंदोलन को यहां आने से रोके रखा। ग़जनी, गौरी के आक्रमणों से इस गठबंधन को गहरा आघात लगा। इन आक्रमणों और बाद में दिल्ली सलतनत के राजाओं की नीतियों के कारण भारतीय समाज विशेषत: हिंदू समाज की स्थिति और खराब हो गई।

ऐसे में संत रामानंद जी ने १४वीं-१५वीं सदी में उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात किया। उनका संपर्क दक्षिणी भारत के संतों से भी था। इस प्रकार दक्षिण भारत के ५०० साल से अधिक समय के बाद उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन शुरू हुआ। संत रामानंद जी ने जातिगत आदि भेदभावों को दरकिनार कर लोगों को शिष्य बनाया, जिन्होंने भक्ति आंदोलन को घर-घर तक पहुंचा दिया।

मूर्ति-पूजा एवं जाति-व्यवस्था के विरोध में प्रवचन करने वाले भक्तों-संतों की एक लंबी शृंखला तैयार हो गई। उन्होंने भारतीय समाज को एक नया जीवन-दान दिया और तमाम कुरीतियों पर कुठाराघात किया।

तब तक भारत में इसलाम की भी जड़ें जम चुकी थीं। राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियां कुछ ऐसी बनीं कि हिंदू व मुसलिम दोनों सम्प्रदायों के बीच संकट का माहौल बना रहा। कुछ संतों ने हिंदू-मुसलिम एकता की जबरदस्त वकालत की। उनमें भक्त कबीर जी और प्रथम सिक्ख गुरु श्री गुरु नानक देव जी के नाम सबसे ऊपर हैं।

श्री गुरु नानक देव जी ने समूचे भारत का व्यापक भ्रमण किया। दक्षिण में श्रीलंका और पश्चिम में मक्का-मदीना की भी यात्रा की। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया। उन्होंने ईश्वर के एकत्व पर बल दिया, जिसका नाम-सिमरन कर और जिसके प्रति श्रद्धा व भक्ति रखकर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सकता था। उन्होंने ईश्वर के साथ एकाकार होने के लिए चरित्र व आचरण की शुद्धता एवं मार्गदर्शन के लिए 'गुरु' की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने पाखंडों की भर्त्सना की और एक ऐसे मध्य मार्ग की वकालत की जिसमें आध्यात्मिक जीवन को गृहस्थ के कर्त्तव्यों के साथ समन्वित किया जा सकता है।

श्री गुरु नानक देव जी के सार्वभौम और

उदार दृष्टिकोण ने शांति, सद्भावना एवं पारस्परिक मेलजोल का वातावरण बनाने के लिए आदर्श पृष्ठभूमि तैयार की। उनका लक्ष्य मानव-मानव के बीच के अंतर को मिटाना था। उन्होंने मानव-समानता एवं भाईचारे का पक्ष लिया तथा जाति-व्यवस्था की कड़ी निंदा की। गलत कार्य करने वाले शासकों को भी अधर्मी और अत्याचारी करार दिया। उन्होंने एक आदर्श राज्य की परिकल्पना की और कहा कि राजा को नैतिकता, न्याय एवं समानता की राह पर चलने वाला होना चाहिए। इस प्रकार श्री गुरु नानक देव जी ने पूरी मानवता को मोक्ष-प्राप्ति के रास्ते दिखाए।

सहायक संदर्भ-सूची :

१) भारतीय दर्शन की रूप-रेखा, प्रो. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
२)भारतीय दर्शन की रूप-रेखा, आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखंभा पब्लिशर्स, वाराणसी।
३) मध्यकालीन भारत, सतीश चन्द्र, जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
४) भारतीय धर्मों का परिचय, हरबंस सिंह व लालमणि जोशी, गुरु गोबिंद सिंघ धर्म अध्ययन विभाग, पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला।
५) हिन्दूज़्म, स्वामी निखिलानंद, इंग्लैंड।

कविता

सच्चा सिक्ख होने का जज़्बा



*-डॉ. कशमीर सिंघ 'नूर'**

सिक्खों की अपनी अलग पहचान होती है। सिक्खों की निराली आन, बान, शान होती है।
वे अपनी पहचान स्वयं बनाते हैं। देकर कुर्बानियां सिक्खी को, महान बनाते हैं।
और उसे अपने बलबूते पर, कायम रखते हैं। केसरी झंडे की ऊंची शान, कायम रखते हैं।
इन्हें जबरदस्ती कोई भी ताकत और हकूमत, किसी अन्य रूप में बदल नहीं सकती।
इन्हें किसी भी तरह झुका नहीं सकती, सिक्खी-स्वरूप को खत्म नहीं कर सकती।
तपती तवी पर लिखी गई, तवारीख सिक्खी की। चरखड़ियों पर बुनी गई, तवारीख सिक्खी की।
उबलती देगों में उबलकर, यह परवान चढ़ी। खंडे की धार पर चलकर, यह परवान चढ़ी।
नींवों में चिनकर यह, जवान बन गई। गढ़ी चमकौर में जूझते हुए, तूफ़ान बन गई।
जुल्मों को मिटाने के लिए, सिक्खी कुर्बान होती है। शरण में आने वालों पर यह, मेहरबान होती है।
सिक्खी कभी किसी भीड़ का, हिस्सा नहीं बन सकती। किसी भी संकट में अपनी पहचान, नहीं खो सकती।
सिक्खों की न्यायप्रियता, धर्म-परायणता, धर्म-निर्पेक्षता, दुनिया की तवारीख के सुनहरी पन्नों पर दर्ज है।
सांप्रदायिक नहीं होते सच्चे सिक्ख कभी भी, रक्षा हेतु मज़लूमों की ये, निभाते अपना फर्ज़ हैं।
दुनिया में सिक्खों का बहुत, मान व सम्मान है। सच्चा सिक्ख होने का जज़्बा, बहुत महान है।

**बी-एक्स ९२५, महल्ला संतोखपुरा, होशियारपुर रोड, जलंधर-१४४००४, मो. ९८७२२-५४९९०*

सिक्ख इतिहास और श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

*-स. निरवैर सिंघ अरशी**

यद्यपि बंगला साहित्य में सिक्ख शूरवीरों का वर्णन आम है, परंतु इस साहित्य में इनका नंबर राजपूतों और मराठों के बाद ही आता है। उदाहरणत: बंकिमचन्द्र और रमेशचन्द्र दत्त ने अपने उपन्यासों में राजपूत और मराठा योद्धाओं की वीरता और मुगल साम्राज्य के विरुद्ध उनके संग्राम को तो वर्णित किया है, परंतु जुझारू सिक्ख कौम के बलिदानों की चर्चा उनकी कथाओं में नहीं हुई। हां, श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा कुछ अन्य लेखकों द्वारा समय-समय पर अवश्य ऐसे प्रयत्न हुए जिनके फलस्वरूप सिक्ख-शौर्य की चर्चा भी प्राय: बंगला साहित्य में होने लगी तथा बंगाल के लोगों ने गौरवशाली सिक्ख इतिहास से देश व कौम के लिए पुर्जा-पुर्जा कट मरने की प्रेरणा ग्रहण की।

विश्वभारती विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के डॉ. हिमाद्रि बनर्जी के अनुसार बंगालवासियों व लेखकों को पंजाब की संस्कृति व साहित्य के विषय में विशेष जानकारी १८४९ ई. में ब्रिटिश कंपनी द्वारा पंजाब के अधिग्रहण के बाद ही मिलनी प्रारंभ हुई जब राज्य-प्रबंध व व्यापार में सहायता पहुंचाने की खातिर बंगाल से कंपनी-कर्मचारियों का आवागमन शुरू हुआ। ये लोग परत कर पंजाब के बहादुर लोगों, उनके विकसित स्वभाव, गौरवशाली इतिहास, सभ्याचार और धर्म के विषय में अपने विचारों से, लिखित या मौखिक रूप में अपने प्रदेश के लोगों को अवगत कराने लगे। इससे प्रेरित होकर बंगाली कवि, लेखक, पत्रकार, चिंतक, धार्मिक और राजनीतिक नेता पंजाब जाने लगे तथा धीरे-धीरे पंजाब का इतिहास बंगाल के लोगों के लिए आम चर्चा का विषय बन गया। कुछ ही वर्षों में बंगला लेखकों द्वारा सिक्ख धर्म व सिक्ख इतिहास पर इतना कुछ रचा गया कि यह अपने आप में एक इतिहास है। 'जपु जी साहिब' के बंगला भाषा में अनेक अनुवाद हो चुके हैं, जिनमें जैनेद्र मोहन चटर्जी कृत अनुवाद तो सुप्रसिद्ध है। इस अनुवाद की प्रमाणिकता का अंदाज इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि इसकी भूमिका दो-चार या दस पृष्ठों की नहीं, बल्कि पूरे साठ पृष्ठों की है। श्री चटर्जी ने 'जपु जी' को 'गण-गीता' अर्थात् 'लोगों की पवित्र पुस्तक' की संज्ञा दी है। उन्होंने भूमिका में लिखा है: "यदि जपु जी की दैवी बाणी को लोगों तक पहुंचाया जाये तो देश में एक नयी आत्मिक क्रांति आ सकती है।" लाल बिहारी सिन्हा, सतीश चन्द्र बैनर्जी, किरण चन्द्र दरवेश, अविनाश चन्द्र मजूमदार तथा जैनेन्द्र मोहन दत्त द्वारा रचित जपु जी की टीकाओं को भी बंगला साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त है। प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता कृष्ण कुमार मित्र ने तो श्री गुरु नानक देव जी की जन्म-गाथा के अलावा श्री गुरु ग्रंथ साहिब का बंगला अनुवाद भी प्रारंभ किया था परंतु बड़े दुर्भाग्य की बात है कि उनके

***C/o** *अरशी गिफ्ट सेंटर, नवीं आबादी, श्री अनंदपुर साहिब (रोपड़)-१४०११८, मो. ९८८८६-३६४१३*

द्वारा तैयार पांडुलिपि कहीं गुम हो गयी। श्री बरदकांत राय की पुस्तक 'सिक्ख युद्धेर इतिहास' में महाराजा रणजीत सिंघ की मृत्यु के बाद अंग्रेजों और सिक्खों के मध्य हुई लड़ाइयों का विशेष उल्लेख है। बीसवीं शताब्दी के शुरू में परमनाथ सान्याल ने कनिंघम द्वारा रचित 'हिस्ट्री ऑफ द सिक्खस' का बंगला अनुवाद किया। श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के जीवन पर आधारित बिपिन बिहारी नन्दी का काव्य-नाटक १९०९ में प्रकाशित हुआ। यह बात विशेष तौर पर उल्लेखनीय है कि गत सौ वर्षों में हिंदी को छोड़, अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में, बंगला भाषा में सिक्ख धर्म और इतिहास के बारे में सर्वाधिक लिखा गया है तथा इस पुनीत कार्य का श्रेय नि:संदेह श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर व उनके पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर को प्राप्त है, जिन्होंने बंगाल-निवासियों को उत्तर भारत की इस महान् विरासत से जोड़ने में विशेष भूमिका निभायी।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी आत्म-कथा में लहिणू नामक एक पंजाबी व्यक्ति की चर्चा की है जो टैगोर घराने में कार्यरत था। टैगोर लिखते हैं कि उसके मन में हमारे परिवार के प्रति अपार श्रद्धा थी तथा जो आत्मिक स्नेह उसे लोगों से प्राप्त था, उसके बारे में उसका कहना था-- "ऐसा मान तो किसी 'रणजीत सिंघ' को ही शोभित है।" वे आगे लिखते हैं कि लहिणू परदेसी होने के अलावा पंजाबी भी था, जिसने हमारे मनों पर विजय पा ली थी। हम समस्त पंजाबी कौम की वैसी ही प्रशंसा करते हैं जैसी महाभारत के वीर नायकों-- अर्जुन व भीम की। हमारे घर में पंजाब के लहिणू का होना एक अत्यन्त ही गर्व और शोभा की बात थी।

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के पूज्य पिता श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर पहली बार १८५७ ई. में श्री अमृतसर आये, जहां उन्होंने पावन श्री हरिमंदर साहिब के दर्शन किये। दिल्ली विश्वविद्यालय के टैगोर प्राध्यापक (बंगला भाषा एवं साहित्य) प्रो. आर. के. दासगुप्ता के अनुसार श्री हरिमंदर साहिब की यात्रा के समय वहां हो रही संध्या-काल की आरती ने उन्हें अत्यधिक प्रभावित किया। आरती के बोल *"गगन मै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती"* ने तो उन्हें इतना प्रभावित किया कि उन्होंने गुरमुखी लिपि सीखने और श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पंजाबी भाषा में अध्ययन करने की ठान ली।

बंगला भाषा में रचित अपनी आत्म-कथा में श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर ने यह आरती बंगला लिपि में उद्धृत की है तथा लिखा है-- "ब्रहमो समाज में हम लोग सप्ताह में केवल दो घंटे प्रार्थना में जुटते हैं, जबकि सिक्खों के श्री हरिमंदर साहिब में दिन-रात उपासना होती है। अगर कोई व्यक्ति रात्रि में बेचैनी या कठिनाई अनुभव करता है तो वह उसी समय श्री हरिमंदर साहिब में जाकर 'अरदास' (प्रार्थना) करके आत्मिक शांति प्राप्त कर सकता है। इस उत्तम रीति का अनुसरण ब्रहमो-समाज के अनुयायियों को भी करना चाहिए। श्री टैगोर की आत्म-कथा के प्रथम संपादक, प्रियनाथ शास्त्री ने उनके टैगोर के द्वारा जनेऊ त्यागने के फैसले के पक्ष में भी सिक्ख जाति का ही हवाला दिये जाने का उल्लेख किया है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि सिक्ख धर्म के विषय में उनका अध्ययन कितना गहन था।

उन्नीसवीं शताब्दी के बंगाल में ब्रहमो-समाज का विलक्ष्ण स्थान रहा है तथा श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे बुद्धिजीवियों द्वारा स्वीकृत विशाल दृष्टिकोण के फलस्वरूप ब्रहमो-समाज में

आई धार्मिक जागृति ने बंगला-भाषी लोगों में सिक्ख धर्म के प्रति और अधिक रुचि जागृत की। इसी कारण ब्रहमो-समाज की बंगला प्रार्थना-पुस्तक 'ब्रहमो-संगीत' में सिक्ख गुरु साहिबान द्वारा उच्चारित बाणी के नौ शबद (पद) शामिल किये गये। ये शब्द हैं-- *"ठाकुर तुम्ह सरणाई आइआ ॥"*-- सारंग राग में श्री गुरु अरजन देव जी की बाणी *"रामु सिमरि रामु सिमरि इहै तेरै काजि है ॥"*-- जैजावंती राग में श्री गुरु तेग बहादर साहिब जी की बाणी *"बिसरि गई सभ ताति पराई ॥ जब ते साध संगति मोहि पाई ॥"*-- कानड़ा राग में श्री गुरु अरजन देव जी की बाणी *"कुचिल कठोर कपट कामी ॥ जिउ जानहि तिउ तारि सुआमी ॥"* कानड़ा राग में श्री गुरु अरजन देव जी की बाणी *"बिरथा कहो कहउ सिउ मन की ॥"* आसा राग में श्री गुरु तेग बहादर साहिब जी की बाणी; *"प्रभ इहै मनोरथु मेरा ॥ क्रिपा निधान दइआल मोहि दीजै करि संतन का चेरा ॥"*-- देवगंधारी राग में श्री गुरु अरजन देव जी की बाणी।

इन शबदों का ब्रहमो-समाज के बाहर भी काफी प्रचलन था। यहां तक कि दुर्गादास लाहिड़ी द्वारा सन् १९०५ ई में संपादित बंगला गीतों के संग्रह 'बांगालीर गान' में भी ये शबद शामिल किये गये थे। "गगन मै थालु" शबद-आरती का बंगला अनुवाद श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा सर्वप्रथम १८७४ ई में 'तत्व बोधिनी पत्रिका' में प्रकाशित किया गया। अनुवादित शबद के कुछ अंश--"तारे आरती करे चन्द्र तपन, देव मानव बंदे चरन, असीम से विश्व सरन, तार जगत मंदिरे। अनादि काल अन्नत गगन, से असीम महिमा मगन, ते तरंग उठे सधन, आनंद नंद नंद रे।"

श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर ब्रहमो-समाज लहर के महारथियों में से एक थे। श्री अमृतसर की यात्राओं के समय श्री हरिमंदर साहिब में निरंतर चल रहे कीर्तन-प्रवाह ने आपके दिलो-दिमाग पर जो प्रभाव डाला उसी के परिणामस्वरूप *"गगन मै थालु, ... ॥"* आदि शबद ब्रहमो-समाज की प्रार्थना-पुस्तक का विशेष अंग बने तथा शीघ्र ही बंगला बंधुओं द्वारा स्वीकृत किये गये। जब १८७२ ई में श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर दूसरी बार श्री अमृतसर आये तो ११ वर्षीय बालक श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर भी उनके साथ थे। श्री हरिमंदर साहिब के दैवी सौंदर्य और एकरस गुरबाणी कीर्तन का बालक टैगोर के मन-मंदिर पर जो गहन प्रभाव पड़ा वह उन्हें आजीवन एक नयी प्रेरणा देता रहा। टैगोर की श्री अमृतसर-यात्रा ने उनमें सिक्ख धर्म के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा पैदा कर दी तथा कालांतर में उन्होंने सिक्ख वीरता की जो अद्वितीय गाथाएं लिखीं वे युगों-युगांतरों तक बंगाल व पंजाब के बीच एक अटूट कड़ी का काम करती रहेंगी। आत्म-कथा '**My Reminiscences**' में उन्होंने लिखा है : "अमृतसर का स्वर्ण मंदिर मुझे स्वप्न की भांति याद आता है। सिक्खों के इस गुरु-दरबार, जो सरोवर के मध्य स्थित है, में कई बार अमृत-काल में अपने पिता के साथ गया, जो श्रद्धालुओं की संगत में शामिल होते, कई बार गाये जा रहे शबद के सुर में सुर मिलाने लगते। एक अजनबी को अपनी पूजा-उपासना में तल्लीन देख उन लोगों का हमारे प्रति स्नेह और भी बढ़ जाता तथा लौटते समय वे हमें बताशों, प्रसाद व अन्य मिठाइयों से लाद देते।"

श्री टैगोर ने अपने लेखों और कविताओं में सिक्ख इतिहास की विभिन्न घटनाओं को अत्यंत सुंदर ढंग से लेखनीबद्ध किया है।

'निष्फल उपहार' नामक बंगला कविता, जिसे उन्होंने बाद में (**Futile Present**) शीर्षक से अनुवादित किया और अपने कविता-संग्रह (**Fruit Gathering**) में संकलित किया, में श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी द्वारा नदी की तेज़ धारा में सोने के कंगन फेंकने की गाथा वर्णित है। 'गुरु गोबिंद' शीर्षक कविता में देश और कौम के लिए गुरु जी के ऐतिहासिक योगदान तथा इस कार्य की पूर्ति के लिए उनके द्वारा किये गये निरंतर संघर्ष की चर्चा है। 'शेष शिक्षा' (**The Last Lesson**) शीर्षक कविता गुरु जी के नांदेड़ (महाराष्ट्र) प्रवास से संबंधित है तथा महाकवि भाई संतोख सिंघ जी के ग्रंथ 'गुर प्रताप सूरज' में वर्णित कथा-वस्तु पर आधारित है। गुरु जी का वध करने की साजिश बनाकर आये पठान-पुत्र के संग उनका शतरंज खेलना और अपने (पठान-पुत्र) पिता के कत्ल का बदला लेने के लिए उसे बार-बार उकसाने की घटना का इस कविता में बाखूबी बयान किया गया है। श्री टैगोर के लेखों-- 'सिक्ख स्वाधीनता' तथा 'शिवाजी ओ गुरु गोबिंद सिंघ' में गुरु जी को एक महान राष्ट्रनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार श्री टैगोर की कविता 'बंदी वीर' (**The Capitive Hero**) जो बंगाल के विद्यालय में 'जन गण मन' की भांति ही लोकप्रिय है, बाबा बंदा सिंघ बहादर और उनके अबोध शिशु के बलिदान की अमर गाथा पर आधारित है। भाई तारू सिंघ जी के बलिदान सम्बंधी उनकी कविता भी अत्यंत लोकप्रिय हुई है।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्री टैगोर के समान अन्य बुद्धिजीवियों को भी विशेषत: श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी के विलक्षण व्यक्तित्व की तुलना में दशम गुरु पर बंगला में अधिक साहित्य-सृजन किया गया है। इन लेखकों में तिनकड़ी बैनर्जी. शरत कुमार राय, बसंता बैनर्जी, देवेन्द्रनाथ मित्रा, जोगेन्द्र नाथ गुप्ता, जतीन्द्रनाथ समादार तथा बिपिन बिहारी नन्दी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इसी प्रकार सन् १८९७ ई में महान समाज-सुधारक स्वामी विवेकानंद जब पंजाब आये तो लाहौर व अन्य कई स्थानों पर अपने भाषणों में उन्होंने श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी की महानता का विशेष उल्लेख करते हुए कहा-- "मेरी बात पर विश्वास करो। अगर तुम देश की कोई भलाई करना चाहते हो तो तुम में से प्रत्येक को श्री गुरु गोबिंद सिंघ जी बनना पड़ेगा।"

यहां एक अन्य उल्लेखनीय बात यह है कि स्वामी जी ने अपने भाषण की समाप्ति पर 'वाहिगुरु जी का खालसा, वाहिगुरु जी की फ़तह' का नारा ही बुलंद किया। कुछ विद्वानों का यह मत है कि बंगाल-निवासियों में जो राजनीतिक चेतना आयी उसका कारण बंगाली विद्वानों द्वारा बंगला भाषा में पंजाबी शूरवीरों पर रचित साहित्य ही था, जिसमें श्री टैगोर ने सर्वोत्तम भूमिका निभायी। इसके अलावा गत शताब्दी के चौथे दशक में कलकत्ता विश्वविद्यालय में स्नातकोतर स्तर पर सिक्ख इतिहास का अध्ययन प्रारंभ किये जाने का श्रेय भी श्री टैगोर की सिक्ख इतिहास में विशेष रुचि तथा उनके द्वारा रचित विशिष्ट साहित्य को ही जाता है।



नाम जपना क्यों अनिवार्य है?

*-स. अवतार सिंघ**

यह तो हम भली-भांति जानते ही हैं कि जो घड़ी हमारी साधसंगत में व्यतीत होगी वह ईहां-ऊहां अर्थात् दोनों जहानों में हमारे लिए सहाई होगी। हमने अपने जिम्मे लगते सांसारिक काम भी अवश्य करने होते हैं, उनको करना छोड़ नहीं देना लेकिन हमको यह पूर्णत: स्पष्ट हो जाना चाहिए कि ये केवल इस लोक तक ही सीमित हैं। ये हमारे आगामी जीवन अर्थात् परलोक में किसी काम न आयेंगे। यह बात हमको बाणी द्वारा गुरु साहिब ने समझा दी है। आप फरमान करते हैं :

अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥
(पन्ना १२)

साधसंगत में आना क्यों अनिवार्य समझा गया है? इसलिए कि वहां नाम-स्मरण किया जाता है और केवल नाम ही है जो हमारे साथ जाना है। हमारे सम्बंधी, बेटियां, बेटे, बहन-भाई, दोस्त-मित्र जहां हमारी किसी प्रकार की कोई सहायता करने के योग्य न होंगे वहां हमारी सहायता केवल प्रभु का स्मरण किया हुआ नाम ही करेगा। मनुष्य मात्र मृत्यु के बारे में ख़्याल करके ही प्राय: भयभीत हो जाता है। मृत्यु के भय से बचने का एक मात्र सशक्त उपाय केवल प्रभु का साधसंगत में स्मरण किया हुआ नाम ही है। यह सच्चाई गउड़ी राग में अंकित सुखमनी साहिब की पावन बाणी में श्री गुरु अरजन देव जी ने हमें गहन रूप से समझा दी है:

जह मात पिता सुत मीत न भाई ॥
मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई ॥
जह महा भइआन दूत जम दलै ॥
तह केवल नामु संगि तेरै चलै ॥
(पन्ना २६४)

पवित्र गुरबाणी द्वारा गुरु साहिब ने हमको बार-बार समझाया है कि हे भाई! यह मनुष्य जन्म तो मिलता ही प्रभु का नाम स्मरण करने के लिए ही है। यहां तक कथन किया है कि हे भूल-भटके मनुष्य! तेरे वे सभी काम जो नाम के बिना हैं वे सभी व्यर्थ हैं। इसके विपरीत जिन कामों में प्रभु के पवित्र नाम का सहारा लिया जाता है वो तेरे लिए वास्तविक रूप में काम आने वाला असली धन है :

साथि न चालै बिनु भजन बिखिआ सगली छारु ॥
हरि हरि नाम कमावना नानक इहु धनु सारु ॥
(पन्ना २८८)

दुख की बात है कि हम गुरबाणी पढ़ते हैं, सुनते हैं परंतु प्राय: इसमें विद्यमान गुरु साहिब के इस वास्तविक प्रयोजन को आंखों से ओझल कर देते हैं। हम सबको यह आत्म-विश्लेषण करने की आवश्यकता है कि क्या गुरबाणी का यह मूल प्रयोजन हमने सही प्रकार से समझा है और अपने जीवन में हम इसका व्यवहारिक प्रयोग करने के लिए प्रयत्नशील हैं कि नहीं। हम गुरबाणी सुनकर इस महान प्रयोजन के लिए उतने संजीदा नहीं होते जितने संजीदा होने की गुरु साहिब अपने सिक्खों से उम्मीद करते हैं। कई बार हमको गुरबाणी का प्रयोजन झकझोरता भी है लेकिन हम फिर धन एकत्र करने की दौड़-धूप में ही लगे रहते हैं वास्तविक नाम रूपी धन एकत्रित करने की दिशा में अधिक

**मकान नं: ८२, पुरानी मेहर सिंघ कालोनी, पटियाला, मो ९८७२१-८४४४४*

प्रयासरत नहीं हो पाते। गुरु साहिब की यह स्पष्ट सीख भी हम भुला देते हैं कि हमको अपने प्रत्येक अच्छे या बुरे कर्म का हिसाब देना होगा। हम जपु जी साहिब में नित्य ही पढ़ते हैं कि :

चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
(पन्ना ८)

आज के समाज में हम दुनियावी वृत्ति वाले लोग मात्र यही जानते हैं कि जिसके पास अधिक धन है केवल वही धनवान है, परंतु गुरमति में अधिक धन वाले मनुष्य को धनवान नहीं समझा गया। अब यह प्रश्न पैदा होता है कि यदि लाखों-करोड़ों रुपयों वाला या लाखों-करोड़ों धन-संपदा वाला धनवान नहीं तो फिर कौन धनवान है? इसका निर्णय करते हुए गुरु साहिब फरमान करते हैं :

राम नाम जो करहि बीचार ॥
से धनवंत गनी संसार ॥ (पन्ना २८१)

अर्थात् नाम जपने वाला तथा प्रभु-नाम की विचार करने वाला ही इस संसार में धनवान है।

आज हरेक मनुष्य यह चाहता है कि उसका जीवन सुखों से लदा हुआ हो परंतु इसके विपरीत वह हर समय दुखों में ही घिरा रहता है। इसका मुख्य कारण यही है कि हमने गुरबाणी के वास्तविक प्रयोजन को भुला दिया है। यदि हमने पावन बाणी पर विचार की होती तो हमको अवश्य स्पष्ट हो जाता कि सदीवी सुख कहां विद्यमान है। यदि हमारा मन, तन परमात्मा के पवित्र नाम से तृप्त हो जाए तो हम सदैव सुखी एवं प्रसन्न हो सकते हैं। यही परिभाषा सुखी मनुष्य की पवित्र गुरबाणी में दी गई है :

मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी ॥
सदा सदा जानहु ते सुखी ॥ (पन्ना २८१)



कविता

दशम गुरु जी को बारंबार प्रणाम

*-श्री राधेश्याम सेन**

आन-बान-सम्मान सभी मिल, जपते जिनका नाम। उस पावन गुरुवर को मेरा, बारंबार प्रणाम।
देश-धर्म पर कठिन समय था, अत्याचार बढ़े थे। मानवता की तब छाती पर, दानव बड़े-बड़े थे।
कठिन काल में महाकाल बन, आये गुरुवर काम। आन-बान-सम्मान सभी मिल . . .
जिनको पाकर जनमानस में, धर्म-भावना जागी। देश-धर्म की खातिर जन ने, हीन भावना त्यागी।
हुए इकट्ठे गुरु के द्वारे, धर्म-ध्वजा ली थाम। आन-बान-सम्मान सभी मिल . . .
धर्म-रक्षक गुरु दशम हैं, अखिल जगत में न्यारे। देश-धर्म की खातिर जो, अपना सब कुछ वारे।
अत्याचारों पर उन्होंने, चढ़ कर कसी लगाम। आन-बान-सम्मान सभी मिल . . .
सवा लाख से एक लड़ाने, जब संकल्प उचारे। कांप उठे थे तब वैरी के, भय से सैनिक सारे।
अमन-चैन तब से वैरी का, भारी हुआ हराम। आन-बान-सम्मान सभी मिल



**शिव मंदिर के पीछे, मंगली पेट, सिवनी (म. प्र.)-४८०६६१*

शतायु बुजुर्ग धावक : सरदार फौजा सिंघ

*-स. सुरजीत सिंघ**

यदि मन में इच्छा-शक्ति, परिश्रम, लगन हो तो जीवन में कभी भी, कहीं भी और किसी भी मंज़िल तक पहुंचा जा सकता है। गतिशीलता ही जीवन का आधार है, जबकि जड़ता मृत्यु की परछाईं है। आलस्य मानव देह में रहने वाला मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है, जबकि कठिन परिश्रम, अनुशासन और प्रसन्नता आत्मा को शक्ति प्रदान करते हैं, जिसका जीता-जागता उदाहरण है ब्रिटेन के लंदन शहर के इलफर्ड क्षेत्र में रहने वाले भारतीय मूल के शतायु बुजुर्ग धावक सरदार फौजा सिंघ। किसी भी छड़ी का अथवा अन्य कोई सहारा लेना तो दूर रहा, सरदार फौजा सिंघ की आयु जितनी अधिक है, उतना ही उनका हौसला भी बुलंदी पर है और कुछ विशेष करिश्मा कर गुज़रने की इच्छा-शक्ति भी उतनी ही प्रबल है।

वर्ष १९४७ में भारत विभाजन के उपरांत ३६ वर्ष की आयु में सरदार फौजा सिंघ भारत छोड़कर ब्रिटेन चले गये और लंदन शहर में जाकर बस गये। यहीं से आपका आगे का जीवन प्रारंभ होता है। इस अवधि में स. फौजा सिंघ की पांच संतानें हुईं और ५२ वर्ष की लंबी अवधि के पश्चात् सन् १९९९ ई में जब आपकी आयु ८८ वर्ष की हो गई और आपने मैराथन दौड़ में भाग लेने का दृढ़ निश्चय कर लिया तो आपके फलते-फूलते वृहद् परिवार में १३ पोतों के अतिरिक्त ५ पड़पोते भी शामिल हो चुके थे।

स. फौजा सिंघ शुरू से ही टहलने और दौड़ लगाने के अभ्यस्त रहे हैं, इसलिए उनके पैरों और टांगों की शक्ति और शरीर की स्फूर्ति यथावत् बनी रही। भरे-पूरे परिवार से इस कार्य में आपको पूर्ण सहयोग और भरपूर उत्साह अवश्य मिलता रहा। स. हरमिंदर सिंघ, जो कि आपके कोच हैं, बड़े सूझवान, उत्कृष्ट समाजसेवी, मैराथन दौड़ के विशेषज्ञ एवं पूरी रुचि रखने वाले विशिष्ट एवं उत्साहित व्यक्ति हैं। स. फौजा सिंघ का जीवन नितांत साधारण, ईश्वर-भक्तिमय, अनुशासित, समाजसेवी एवं उच्च विचारों वाला सदा प्रगतिशील रहा है। आप कठिन परिश्रमी तो हैं ही, साथ ही साथ दिन-प्रतिदिन कई-कई मीलों की लंबी दौड़ लगाना भी आपका नियमित अभ्यास है।

स. फौजा सिंघ पंजाब के जलंधर शहर के गांव व्यासपिंड के मूल निवासी हैं। आलस्य नाम का शब्द उनके जीवन में कहीं भी और कभी भी परिलक्षित नहीं हुआ है। स. फौजा सिंघ विभिन्न दौड़ों के अतिरिक्त ९ अंतर्राष्ट्रीय लंबी मैराथन दौड़ों में भाग लेकर अपने उत्कृष्ट प्रदर्शन से देश का नाम रोशन कर चुके हैं, जिनमें से ५ मैराथन दौड़ लंदन में, २ टोरांटो में, १ न्यूयॉर्क में एवं १ हांगकांग में शामिल है।

स. फौजा सिंघ ने १९९९ ई में सम्पन्न हुई

**५७-बी, न्यू कालोनी, गुमानपुरा, कोटा (राजस्थान)-३२४००७, मो. ९४१३६-५१९१७*

लंदन की ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ में विश्व-रिकार्ड बनाया है। ८८ वर्ष की आयु में उन्होंने यह रेस लंदन की सड़कों पर दौड़ते हुए ६ घंटे, ११ मिनट में पूरी की, जिसमें ६८००० धावकों ने भाग लिया था। स. फौजा सिंघ इस मैराथन दौड़ में दौड़ने वाले बड़ी उम्र के धावक थे।

वर्ष २००० में लंदन की ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़, ८९ वर्ष की आयु में स. फौजा सिंघ ने ६ घंटे, ५४ मिनट, ४२ सेकंड में पूरी कर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया।

वर्ष २००१ में स. फौजा सिंघ ने ९० वर्ष की आयु में लंदन में आयोजित ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ में भाग लेकर तीव्र गति से दौड़ते हुए पिछले विश्व-रिकार्ड को ही १ घंटे पीछे छोड़ दिया था, जबकि दौड़ में भाग लेने वाले धावकों की आयु ३० वर्ष तक की भी थी। भारत में जन्मे स. फौजा सिंघ जब तक देश में रहे तब भी और उसके बाद विदेश में रहकर भी निरंतर दौड़ लगाते रहे तथा विभिन्न खेल-स्पर्धाओं में भाग लेकर विजय अर्जित कर सम्मानित होते रहे।

वर्ष २००२ में ९१ वर्ष की आयु में लंदन में आयोजित ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ में भाग लेकर श्रेष्ठ प्रदर्शन किया।

वर्ष २००३ में अमेरिका के शहर न्यूयार्क में स. फौजा सिंघ ने ९२ वर्ष की आयु में ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ में भाग लेकर रेस पूरी की।

वर्ष २००३ में ब्रिटेन के लंदन शहर में ९२ वर्ष की आयु में स. फौजा सिंघ ने ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ ५ घंटे, ४० मिनट, १ सेकंड में पूरी कर सबको आश्चर्यचकित कर दिया।

बुजुर्ग धावक के उत्कृष्ट प्रदर्शन एवं उत्साह से प्रभावित होकर ब्रिटेन की महारानी एलिजाबेथ द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए स. फौजा सिंघ को **'Pride of U.K.'** के सम्मान से अलंकृत किया गया।

वर्ष २००४ में कनाडा के टोरांटो शहर में हुई ४२ किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ को ९३ वर्ष की आयु में स. फौजा सिंघ ने पूरा किया।

वर्ष २०११ के अक्तूबर माह में कनाडा में आयोजित ४२ किलोमीटर लंबी टोरांटो मैराथन को १०० वर्ष की आयु में स. फौजा सिंघ ने ८ घंटे, २६ मिनट, ३० सेकंड में पूरा कर अपना नाम 'गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड्स' में दर्ज करा लिया।

वर्ष २०१२ के फरवरी माह में हांगकांग में आयोजित १० किलोमीटर लंबी मैराथन दौड़ को १०१ वर्षीय शतायु ब्रिटिश भारतीय एथलेटिक स. फौजा सिंघ ने १ घंटे, ३४ मिनट में पूरी कर अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर दिखा दिया कि अभी भी इस बुजुर्ग नौजवान धावक के हौसले बुलंदी पर हैं और कुछ विशेष कर गुज़रने की इच्छा-शक्ति प्रबल है।

चिरयुवा भारतीय सिक्ख धावक द्वारा अपनी आयु को नकारते हुए स्थापित कीर्तिमानों की जीवंतता प्रमाणित करती है कि उनके जीवन कोश में 'असंभव' नाम का कोई शब्द है ही नहीं, क्योंकि अभी वे अर्जित उपलब्धियों को अपनी आयु का अंतिम पड़ाव नहीं मानते। स. फौजा सिंघ पूरी तरह से नशा-विरोधी एवं शुद्ध शाकाहारी हैं। कम खाना एवं अधिक मात्रा में पानी सेवन करना उनकी स्वास्थ्यवर्धक स्फूर्ति का रहस्य है। विश्व प्रसिद्ध कंपनी 'एडिडास' के विज्ञापनों एवं 'इम्पोसिबल इज नथिंग' हेतु इसी चिरयुवा धावक को प्रसिद्ध हस्तियों के मुकाबले

चुना गया है, क्योंकि उनके कीर्तिमान युवकों एवं समाज के लिए प्रेरणादायक एवं आश्चर्यजनक हैं। मैराथन दौड़ों एवं विज्ञापनों से होने वाली अपनी सम्पूर्ण आय आप अपने पास न रखकर गरीबों, निराश्रितों एवं असहायों के कल्याणार्थ विभिन्न चैरिटी संस्थाओं को दान-स्वरूप भेंट कर देते हैं।

'Pride of U.K.' से सम्मानित एवं 'गिनीज़ बुक ऑफ वर्ल्ड रिकाड्र्स' में नाम दर्ज करा चुके स. फौजा सिंघ उत्साहित होकर अक्सर पंजाबी भाषा में कहा करते हैं-- "'मैं लंमी रेस दा घोड़ा हां। देश-कौम दा नाम रोशन करण लई अजे लंमी उमर जीवांगा।"

ईश्वर ऐसे राष्ट्रीय, सौहार्दिक, दानशील, विनम्र भाव वाले शतायु, नेकदिल इंसान की हार्दिक इच्छा अवश्य पूर्ण करें, जो आधुनिक युग के जवानों के लिए प्रेरणा का स्रोत प्रमाणित हो रहे हैं। ऐसा जान पड़ रहा है कि उनके कठिन परिश्रम एवं बुलंद हौसलों के आगे उनकी आयु भी नत्मस्तक है।



पातशाह और बादशाह

*-डॉ. बलबीर सिंघ**

यह घटना उस समय की है जब सिक्ख पंथ के छठे गुरु श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब अपने सैनिक अभ्यास के सिलसिले में एक वन में शिविर लगाये हुये थे।

उस इलाके में एक घसियारा रहता था। वह जंगल से घास काटता, बेचता और अपना गुज़ारा करता। वह गुरु जी का सिक्ख था। उसे जब पता चला कि गुरु जी ने पास ही जंगल में शिविर लगाया हुआ है तो वह सोचने लगा कि गुरु जी के घोड़े के लिये घास लेकर जाऊं।

दूसरे दिन उसने मेहनत कर दो गठरी घास की इक्ट्ठा कर ली। एक गठरी तो बेच दी, दूसरी लेकर गुरु जी के शिविर की तरफ चल दिया। संयोगवश वहीं पास में ही बादशाह जहांगीर भी ठहरा हुआ था। वह घसियारा धोखे से बादशाह जहांगीर के शिविर में चला गया। शिविर में पहुंच कर उसने सिपाही से कहा, "मुझे सच्चे पातशाह के दर्शन करने हैं। मैं यह घास उनके घोड़े के लिये लाया हूं।" सिपाही उसे अंदर ले गया। बादशाह जहांगीर के सामने जाकर उसे पता चला कि वो गलत जगह पर आ गया है। उसने बादशाह से कहा, "क्षमा करना बादशाह हजूर! मैं धोखे से आपके शिविर में आ गया हूं। दरअसल मुझे अपने पातशाह के शिविर में जाना है।"

जहांगीर वस्तुस्थिति को समझ गया। उसने अपने सिपाही से कहा, "घास की गठरी रख लो और इसे सोने की दस अशरफियां दे दो।" घसियारे ने अपनी गठरी सिर पर रख ली और कहा, "बादशाह! यह घास बिकाऊ नहीं है। मैं यह घास अपने पातशाह श्री गुरु हरिगोबिंद साहिब के घोड़े के लिये लाया हूं।" यह कह कर उसने घास की गठरी सिर पर रख कर बाहर का रुख किया। 'बादशाह' उस घसियारे की 'पातशाह' के प्रति श्रद्धा-भक्ति देख कर दंग रह गया।



*२१२, ढुडियाल अपार्टमेंट, मधुबन चौक, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४, फोन ०११-२७०३२८९७

मन का अंधुला माइआ का बंधु

*-डॉ. अमृत कौर**

एक बार श्री गुरु नानक देव जी और भाई मरदाना जी प्रचार-यात्रा पर थे। वे एकांत जंगल में प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद उठा रहे थे कि भाई मरदाना जी को भूख लगी। समीप ही एक बस्ती थी। गुरु जी ने कहा, "जा मरदानिआ, बस्ती में चला जा और भोजन कर आ!" भाई मरदाना जी कहने लगे, "गुरु जी! मुझे वहां कोई नहीं जानता। मांगने पर भी कोई भोजन नहीं देगा। और आप कहते भी हैं कि मांगना पाप है।"

गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ ॥
ता कै मूलि न लगीऐ पाइ ॥ (पन्ना १२४५)

गुरु जी ने कहा, "मरदानिआ! तुझे मांगने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तेरी सेवा के लिए सारा शहर उमड़ आएगा।"

गुरु जी के इन वचनों को सुनकर भाई मरदाना जी नगर में चले गये। गुरु जी ने जैसा कहा था वैसा ही हुआ। भोजन, वस्त्र, धन आदि भेंट हुआ। बहुत आदर सम्मान मिला। भाई मरदाना जी सेवा, आदर-सत्कार से अत्यंत प्रसन्न हुए। उनकी प्रसन्नता का कोई ठिकाना नहीं था।

शाम के समय भाई मरदाना जी कपड़े, गहने, भोजन आदि की गठरी बांधकर गुरु जी के पास पहुंचे। गुरु जी कपड़े, गहने, भोजन आदि देखकर पहले तो मुस्कराए, फिर बोले, "भाई मरदानिआ! यह क्या ले आए हो?" भाई मरदाना जी ने कहा, "सच्चे पातशाह यह आपके वचनों का प्रताप है। सम्पूर्ण शहर मेरी सेवा के लिए उमड़ आया। मैंने पेट भरकर भोजन किया। यह सामान भविष्य में काम आने के लिए लाया हूं।" गुरु जी बोले, "मरदानिआ! हम माया (सामान) इकट्ठी करने के लिए घर से बाहर नहीं निकले। भविष्य की चिंता में संग्रह की भावना इंसान के मन में लोभ पैदा करती है। यदि हम यूं ही वस्तुओं आदि का संग्रह करने लगे तो हम अपने लक्ष्य से भटक जाएंगे। हमारे पास 'शबद' (बाणी) का ख़ज़ाना है। ऐसी अमूल्य निधि के होते हुए हमें सांसारिक पदार्थों से ज्यादा मोह नहीं रखना चाहिए।"

मन का अंधुला माइआ का बंधु ॥
खीन खराबु होवै नित कंधु ॥
खाणा जीवण की बहुती आस ॥
लेखै तेरै सास गिरास ॥
अहिनिसि अंधुले दीपकु देइ ॥
भउजल डूबत चिंत करेइ ॥

(पन्ना ३५४)



**१५४, ट्रिब्यून कालोनी, बलटाना (ज़ीरकपुर)-१४०६०४, मो. ९८१५१-०९९५७*

भ्रष्टाचार : कारण और निवारण

*-डॉ. दादूराम शर्मा**

अर्थ या धन मानव जीवन का आधार है। हमारे मनीषियों ने प्राचीन काल में जिन चार पुरुषार्थों की स्थापना की थी, वे हैं-- धर्म अर्थ, काम और मोक्ष। विज्ञान के इस युग ने धर्म और मोक्ष की मान्यताओं को पूरी तरह नकार दिया है अथवा संदेह के घेरे में लाकर खड़ा कर दिया है। फलत: मानव की सम्पूर्ण सत्ता उसके भौतिक पिंड में सिमटकर रह गई है। ऐसी स्थिति में अर्थ का प्रधान हो जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि उसी पर हमारी समस्त कामनाओं की पूर्ति निर्भर है। फिर भी मनुष्य यदि स्वयं को जीविका-पूर्ति या अपनी रोटी, कपड़ा और मकान तक सीमित रखता तो गनीमत थी, किंतु जब उसके मन में 'तृष्णा' (असीमित और अनियंत्रित भोग-लालसा) ने जन्म लिया तो उसमें उनके साधन भूत धन को बटोरने की प्रबल इच्छा 'वित्तैषणा' जागृत हो गई और यहीं से प्रारंभ हुई मानव जगत में भयानक संघर्ष की कहानी।

हमारी इच्छाएं असीम हैं। एक इच्छा पूरी होती है तो दूसरी जन्म लेती है; दूसरी पूरी होती है तो तीसरी उत्पन्न हो जाती है। इन अनंत लालसाओं की पूर्ति के लिए हमें असीमित धन भी चाहिए। धन कमाने का आदिम उपाय है-- 'श्रम'। श्रम दो तरह का होता है-- शारीरिक और मानसिक या बैद्धिक। शारीरिक श्रम से आदमी किसी तरह पेट भरने लायक ही धन कमा सकता है और मानसिक श्रम से भी उसे पर्याप्त धन तो मिल सकता है किंतु उतना नहीं, जिससे वह अपनी नित्य बढ़ने वाली भोग-लालसाओं की पूर्ति कर सके। अत: उसने त्वरित धन-प्राप्ति के अन्य बेहतर और कारगर उपायों पर विचार किया, जिनमें सर्वप्रमुख था परद्रव्यापहार बल से अथवा छल से दूसरों का धन हड़प लेना। बल से, लूट या युद्ध द्वारा या छल से, ठगी, धोखाधड़ी अथवा जुए आदि द्वारा आदमी आदिम युग से ही दूसरों का धन हड़पता आया है।

बीसवीं सदी के तथाकथित सभ्य मानव ने प्रचुर धन-प्राप्ति का एक अभिनव उपाय खोज निकाला, जिसे 'भ्रष्टाचार' या 'करप्शन' कहा जाता है। वाणिज्य-व्यापार में भ्रष्टाचार जमाखोरी, मिलावटखोरी, कालाबाज़ारी, तस्करी आदि के रूप में व्याप्त हो गया, तो नेताओं और अधिकारियों में वह रिश्वतखोरी है और कर्मचारियों में रिश्वतखोरी के साथ-साथ टालमटोली और कामचोरी। 'दहेज-प्रथा' और 'दहेज-प्रताड़ना' भी इसके सामाजिक रूप हैं।

समाज में सर्वत्र धन और साधन-सम्पन्नता का सम्मान हो रहा है। आज 'व्यक्ति कैसा है' यह कोई नहीं देखता, सभी की दृष्टि 'उसके पास क्या है' पर केंद्रित हो गयी है। सभी का दृष्टिकोण व्यवसायिक हो गया है। संतोष को अकर्मण्यता कहा जाने लगा है। ईमानदारी,

**सेवानिवृत्त प्राध्यापक, महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी (म. प्र.)-४८०६८१, फोन ०७६९२-२२२७९२*

कर्त्तव्यनिष्ठा और श्रम आज जैसे मूर्खता के पर्यायवाची बन गए हों; समाज-सेवा पाखंड में परिणत हो गई हो। स्वाधीनता-संग्राम की अवधि में विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए हमारे जननायक जहां अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को सन्नद्ध रहते थे, वहीं स्वाधीन भारत के नेता देश का सब कुछ हड़प लेने को कटिबद्ध हैं तथा अफ़सरों को तो जैसे पद के रूप में राष्ट्र और जनता को दोनों हाथों से लूटने का लाइसेंस (अनुज्ञापन) ही मिल गया हो। हवालों और घोटालों के रूप में इन महामहिमों की यशोगाथा हम आए दिन समाचार पत्रों में पढ़ते हैं, दूरदर्शन पर देखते-सुनते हैं।

सामाजिक स्तर पर भ्रष्टाचार का मूल कारण व्यक्तिवाद है। लोगों में विलासिता की होड़ अपने भौतिक स्तर को ऊंचा, और ऊंचा उठाने की अत्यधिक लालसा तथा इन सबके लिए जल्दी से जल्दी अधिकाधिक धन बटोर लेने की हवस ने समाज में भ्रष्टाचार को फैलाया है। संस्थापित जीवन मूल्यों और आदर्शों के अस्वीकार और बहिष्कार से यह बेरोक-टोक बढ़ रहा है।

बड़ी विडंबना है कि भ्रष्टाचार पर कानून से अंकुश नहीं लग पा रहा है, क्योंकि कानून ही उसके समक्ष नत्मस्तक हो जाता है, न्याय बिक जाता है। समाज की अतिरंजित भौतिकवादी सोच को बदलकर, धन को जीवन का साध्य नहीं, साधन मानकर और अध्यात्म को स्वीकार करके ही भ्रष्टाचार नियंत्रण किया जा सकता है। जिस आस्तिकता को विज्ञान ने नकार दिया है, उसे पुनः स्वीकारना होगा, धर्म की शरण में जाना होगा। धर्म मानवता है, मानवीय संवेदनाओं और जीवन मूल्यों के स्वीकार और अंगीकार का नाम है। धर्म सांसारिक भोगों को नकारने या त्यागने का परामर्श नहीं देता, क्योंकि मनुष्य-मात्र के लिए यह संभव है भी नहीं। वह भोग की अनुमति तो देता है, किंतु त्याग के साथ, सब्र संतोष के साथ :

बिना संतोख नही कोऊ राजै ॥
सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै ॥ (पन्ना २७९)

हमें अपने मन को काबू में करना होगा। क्योंकि यही सभी बखेड़ों की जड़ है; समस्त कामनाओं और वासनाओं का उद्गम-स्थान है। कामनाएं पूरी करने से और वासनाएं उपभोग करने से ये कभी शांत या तृप्त नहीं होती, अपितु बढ़ती ही जाती हैं। इन्हें तृप्त करने का प्रयास आग में घी का काम करता है :

लोभ लहिर सभि सुआनु हलकु है
हलकिओ सभहि बिगारै ॥ (पन्ना ९८३)

जब तक मनुष्य उसे हृदयहीन और मानवीय संवेदना-विहीन बनाने वाली वित्तैषणा और भोग लालसा को संयत नहीं करेगा, उन पर अंकुश लगाने का प्रयास नहीं करेगा और संतोष करना नहीं सीखेगा तब तक भ्रष्टाचार पर नियंत्रण सम्भव नहीं है। भौतिकवाद द्वारा रोपा गया और खाद-पानी देकर बढ़ाया गया ज़हरीले फलों से लदा भ्रष्टाचार का यह विशाल वृक्ष अध्यात्म के कुल्हाड़े से ही काटा जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर न्यायपालिका की भी निष्पक्ष और कारगर भूमिका होनी चाहिए। दंडविधान भी कठोर होना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यदि संयुक्त राष्ट्र संघ और भी शक्ति-सम्पन्न होगा तभी वह विश्व स्तर पर व्याप्त तस्करी, आतंकवाद, हथियारों की होड़ आदि पर अंकुश लगा सकता है।



गुरबाणी चिंतनधारा : ५९

सुखमनी साहिब : विचार व्याख्या

*-डॉ. मनजीत कौर**

करउ बेनती पारब्रहमु सभु जानै ॥
अपना कीआ आपहि मानै ॥
आपहि आप आपि करत निबेरा ॥
किसै दूरि जनावत किसै बुझावत नेरा ॥
उपाव सिआनप सगल ते रहत ॥
सभु कछु जानै आतम की रहत ॥
जिसु भावै तिसु लए लड़ि लाइ ॥
थान थनंतरि रहिआ समाइ ॥
सो सेवकु जिसु किरपा करी ॥
निमख निमख जपि नानक हरी ॥८॥५॥

(पन्ना २६९)

पांचवी असटपदी की अंतिम पउड़ी में श्री गुरु अरजन देव जी अंतरयामी पारब्रह्म परमेश्वर, जो कि समस्त ताकतों का मालिक है, के समक्ष प्रार्थना करने हेतु जीव को प्रेरित करते हुए निर्मल उपदेश देते हैं कि जो मैं विनती करता हूं वह परमेश्वर जानता है। दूसरे शब्दों में इसका भाव यह भी किया जा सकता है कि उस परिपूर्ण पारब्रह्म के समक्ष (विनती करो जो सर्वज्ञ है अर्थात् सब कुछ जानने वाला है। वह अपनी रचना को स्वयं मान-सम्मान बख़्शने वाला है। जीवों के कर्मानुसार वह स्वयं समस्त फैसले करता है और किसी को स्वयं से दूर तथा किसी को अपने करीब होने का एहसास करवाता है। प्रभु स्वयं ही जीव को इस तरह की बुद्धि बख़्शता है कि जीव उसे अपने निकट अनुभव करने लगे और किसी को इस तरह का एहसास करवाता है कि जीव को लगे कि वो उससे दूर है। अकाल पुरख समस्त उपायों एवं चतुराइयों से दूर है अर्थात् जीव की अटकलें एवं चालाकियां प्रभु-प्राप्ति में किसी तरह सहायक नहीं हो सकती, क्योंकि इस तरह के समस्त आडंबर एवं उपकरणों से वो दूर है। परमेश्वर किसी भी तरह की चालाकी से प्रसन्न नहीं होता, क्योंकि वह जीव की आत्मिक अवस्था से पूर्णतया वाकिफ़ है अर्थात् जीव की आंतरिक मर्यादा को भली-भांति जानता है। उससे जीव की किसी भी स्थिति का दुराव-छिपाव संभव नहीं है। वह जिसे चाहता है उसे अपने साथ मिला लेता है अर्थात् उसे श्वास-श्वास सिमरन करने की दात बख़्श देता है। परमेश्वर जर्रे-जर्रे में समाया हुआ है। कोई भी स्थान, वस्तु या जीव ऐसा नहीं जहां परमेश्वर की मौजूदगी न हो। वही जीव परमेश्वर का असली सेवक बनता है जिस पर प्रभु की अपार रहमत होती है। अंतिम पंक्ति में गुरु जी जीव को श्वास-श्वास सिमरन करने का पावन उपदेश देते हैं।

वह परिपूर्ण परमेश्वर कण-कण में समाया हुआ है तथा जीव की प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति, दशा-भाव, गुण-दोष से वाकिफ़ है अर्थात् उसे भली-भांति जानता है। उस अंतरयामी से कोई भी पर्दा नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। जीव को चाहिए कि वह श्वास-ग्रास उसका सिमरन करता हुआ उसकी रहमत का पात्र बन जाये। उसकी रहमतों की बरसात तो हर पल हो रही है लेकिन साकत जीव मनमुखता के कारण उसकी कृपा से वंचित रह जाता है। जब कोई अपना कर्ता-भाव त्याग कर गुरु की शरण

***२/१०४, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४, मो: ९९२९७-६२५२३*

में आ जाता है तो एक मां की तरह उसका पालन-पोषण करते हुए गुरु हर पल उसका ध्यान रखते हैं, यही नहीं उस शरणागत जीव के हृदय में प्रभु-प्रेम का रंग चढ़ा कर प्रभु से उसका मिलाप करवा देते हैं, जैसा कि गुरबाणी का पावन फरमान है :

जिउ जननी सुतु जणि पालती राखै नदरि मझारि ॥
अंतरि बाहरि मुखि दे गिरासु खिनु खिनु पोचारि ॥
तिउ सतिगुरु गुरसिख राखता हरि प्रीति पिआरि ॥
(पन्ना १६८)

गुरु-कृपा का सदका जिन पर परमेश्वर का गूढ़ा रंग चढ़ता है, गुरबाणी में ऐसे गुरमुखों की अवस्था को बयान करते हुए चौथे पातशाह श्री गुरु रामदास जी पावन फरमान करते हैं :

हरि दइआलि दइआ प्रभि कीनी मेरै मनि तनि मुखि हरि बोली ॥
गुरमुखि रंगु भइआ अति गूड़ा हरि रंगि भीनी मेरी चोली ॥ *(पन्ना १६८)*

सलोकु ॥
काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव ॥
नानक प्रभ सरणागती करि प्रसादु गुरदेव ॥१॥

शरणागत के समस्त विकार दूर हो जाते हैं, इसलिए सदैव परमेश्वर की शरण में रहने का संदेश देते हुए गुरु जी फरमान करते हैं कि हे प्रभु! हे गुरदेव! मैं तेरी शरण आया हूं। कृपा कर कि मेरा काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार नाश हो जाए।

वस्तुत: ये पांच विकार अत्यंत बलशाली दानव हैं और जीव की आध्यात्मिक पूंजी का बड़ी दुष्टता से हरण करने वाले हैं। गुरबाणी में अनेक बार इनका जिक्र आया है। इनसे बचने का एकमात्र उपाय है–– गुरु की शरण में आकर परमेश्वर की बंदगी करना, अन्यथा इन दुष्टों के प्रभाव से बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं बच सके, जैसा कि गुरबाणी का पावन संदेश है :

हे कामं नरक बिस्रामं बहु जोनी भ्रमावणह ॥
चित हरणं त्रै लोक गंम्यं जप तप सील बिदारणह ॥
(पन्ना १३५८)

विकारी हुआ मन केवल गुरमति का धारणी होकर ही इनके प्रभाव से बच सकता है।

असटपदी ॥
जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि ॥
तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥
जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि ॥
तिस कउ सिमरत परम गति पावहि ॥
जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि ॥
तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥
जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना ॥
आठ पहर सिमरहु तिसु रसना ॥
जिह प्रसादि रंग रस भोग ॥
नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग ॥१॥

छठी असटपदी की पहली पउड़ी में पातशाह ने जीव को सर्वसुख-प्रदाता ईश्वर को सदैव हृदय में बसा कर उसका सिमरन करते रहने को प्रेरित किया है। गुरदेव पावन फरमान करते हैं कि जिस परमेश्वर की कृपा से तू छत्तीस प्रकार के स्वादिष्ट पकवान खाता है अर्थात् अनेक रसों के व्यंजनों का भोग करता है, उस प्रभु को सदैव हृदय में याद रख। हे जीव! जिस प्रभु की कृपा से तू अनेक तरह के सुगंधित पदार्थ प्रयोग में लाता है अर्थात् जिसकी रहमत से तू अपने शरीर पर सुगंधियां लगाता है उसका हमेशा सिमरन कर, क्योंकि सिमरन के फलस्वरूप तुझे परमगति अर्थात् ऊंची अवस्था प्राप्त होगी। जिसकी रहमत से तू सुखद महलों (भवनों) में निवास करता है उस दयालु प्रभु का ध्यान हमेशा मन में कर। जिसकी दया-दृष्टि से तू घर-परिवार में सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है अर्थात् आनंदपूर्वक निवास कर रहा है, आठ पहर उसी का सिमरन कर। जिसकी रहमत सदका अर्थात् जिसकी कृपा से तुझे अनेक रंग-तमाशे अर्थात् अनेक खुशियां तथा स्वादिष्ट

खान-पान नसीब हुआ है उस आराधने योग्य परमेश्वर की अर्थात् पूजनीय ईश्वर की सदैव आराधना करनी चाहिए।

उपरोक्त पउड़ी में गुरु पातशाह ने कलयुगी जीवों को पावन संदेश दिया है कि जिसकी रहमत से तू सहजता से समस्त सुखों एवं आनंदमयी पदार्थों का सेवन कर रहा है उस सुख एवं आनंद-प्रदाता प्रभु को कभी हृदय-घर से विस्मृत करने की गुस्ताखी न कर। जो समस्त पदार्थों का भोग करते हुए भी ईश्वर को हृदय-घर में बसा कर रखते हैं वे सदैव आनंदपूर्वक जीवन-यापन करते हैं। इसके विपरीत परमेश्वर को भुलाने वालों की स्थिति अत्यंत दयनीय एवं दुखों-क्लेशों से भरपूर हो जाती है, जैसा कि गुरबाणी का पावन फरमान है :

परमेसर ते भुलिआं विआपनि सभे रोग ॥
वेमुख होए राम ते लगनि जनम विजोग ॥
खिन महि कउड़े होइ गए जितड़े माइआ भोग ॥
(पन्ना १३५)

परमेश्वर के नाम के बिना सुखदायक मायिक पदार्थों को दुखों-क्लेशों में परिवर्तित होते देर नहीं लगती। उस आनंद एवं सुखों के सागर को सदैव याद रखना चाहिए, क्योंकि उसी को हृदय में बसा कर ही जीव सदैव आनंदपूर्वक रह कर अपना लोक-परलोक संवार सकता है।

जिह प्रसादि पाट पटंबर हढावहि ॥
तिसहि तिआगि कत अवर लुभावहि ॥
जिह प्रसादि सुखि सेज सोईजै ॥
मन आठ पहर ता का जसु गावीजै ॥
जिह प्रसादि तुझु सभु कोऊ मानै ॥
मुखि ता को जसु रसन बखानै ॥
जिह प्रसादि तेरो रहता धरमु ॥
मन सदा धिआइ केवल पारब्रहमु ॥
प्रभु जी जपत दरगह मानु पावहि ॥
नानक पति सेती घरि जावहि ॥२॥

इस असटपदी की दूसरी पउड़ी में भी ईश्वर को सदैव स्मरण रखने की प्रेरणा देते हुए गुरु पंचम पातशाह पावन संदेश देते हैं कि हे जीव! जिसकी कृपा से तू अनेक तरह के सुंदर रेशमी वस्त्रों को तन पर धारण करता है, उसे छोड़ कर तू किसी अन्य को चाह रहा है! अर्थात् उसकी रहमतों को विस्मृत कर तू कहां से सुखों की उम्मीद लगाए बैठा है? जिसकी रहमत से सुखों की सेज अर्थात् शैया पर विश्राम करता है, हे मन! आठों पहर उसी का गुणगान कर। जिसकी कृपा से तुझे हर कोई आदर-मान देता है अर्थात् जिसकी दया-दष्टि से तुझे सर्वत्र सम्मान मिलता है उस परमेश्वर की स्तुति सदैव मुख और जिह्वा से करता रह। यही नहीं, जिसकी कृपा से तेरा धर्म (मर्यादा) कायम रहती है उस सर्वकला सम्पूर्ण परमेश्वर को याद कर। हे जीव! स्मरण रख कि अगर तू उस प्रभु का सिमरन करेगा तो दरगाह में अर्थात् परलोक में भी तू सम्मान प्राप्त करेगा और शोभा सहित निज घर में पहुंच जायेगा अर्थात् अपने मूल (परमात्मा) में समाहित हो जायेगा।

परमेश्वर की बंदगी करने से दरगाह में मान प्राप्त होगा; यहां से अर्थात् इस लोक से सम्मान सहित प्रस्थान करेगा अर्थात् आत्मा अपने निज स्वरूप परमात्मा में एकाकार हो जायेगी। यह सब कुछ परमेश्वर के सिमरन द्वारा ही संभव है। जीव को हर पल अपने मूल (परमेश्वर) के सिमरन की बरकतों से जुड़े रहना चाहिए। गुरबाणी का पावन फरमान है :

भई परापति मानुख देहुरीआ ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम ॥
मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥(पन्ना १२)

नाम-सिमरन में लगा प्राणी मोह-माया में गलतान नहीं होता और अपने जीवन-उद्देश्य में सहजता से सफलता हासिल कर अपना लोक-परलोक सफल बना लेता है।



गुर सिखी बारीक है : १४

-डॉ. सत्येंद्रपाल सिंघ*

प्रेम में विश्वास का होना अति आवश्यक है। जिससे हम प्रेम कर रहे हैं, यदि उसके प्रति अविचल और असंदिग्ध प्रेम नहीं है तो वह प्रेम की परिधि में नहीं आता, एक भाव हो सकता है। एक गांव में एक बार बहुत दिनों तक बरसात नहीं हुई और सूखे का संकट मंडराने लगा। गांव के लोगों को अपनी फसलों की चिंता होने लगी। सभी गांव वालों ने मिलकर परमात्मा के पास वर्षा के लिए अरदास करने का निर्णय किया। जब वे सामूहिक रूप से अरदास कर रहे थे तभी एक संत उधर से गुजरे। उनके पूछने पर गांव वालों ने कहा कि वे वर्षा होने के लिए अरदास कर रहे हैं। वे संत बोले कि "आप लोग अपने साथ छाते आदि तो लाये नहीं, बरसात में भीग नहीं जायेंगे?" उपस्थित गांव वाले हंसने लगे, "क्या पता बरसात होगी भी या नहीं।" संत बोले, "जब आप लोगों को अपने परमात्मा पर आश्वस्तता ही नहीं है तो यह अरदास कैसी?" परमात्मा के द्वार पर आये तो हैं किंतु संशय साथ लेकर आये हैं, अपने तर्कों सहित आये हैं, अपनी बुद्धि-कौशल का त्याग करके नहीं आये हैं। परमात्मा कैसे अपने प्रेम, अपनी कृपा की वर्षा कर दे? एक गुरसिक्ख जब परमात्मा से प्रेम की साधना करता है तो सब कुछ त्याग चुका होता है और परमात्मा के प्रति प्रेम के अतिरिक्त उसके मन में कुछ भी नहीं होता। प्रेम के इस एकल तत्व पर ही उसके जीवन का विश्वास टिका होता है। उसे एक परमात्मा ही दिखाई देता है और कुछ नहीं :

होरतु रंगि न रचीऐ सभु कूड़ु दिसंदा।
होरतु सादि न लगीऐ होइ विसु लगंदा।
होरतु राग न रीझीऐ सुणि सुख न लहंदा।
होरु बुरी करतूति है लगै फलु मंदा।
होरतु पंथि न चलीऐ ठगु चोरु मुहंदा।
पीर मुरीदां पिरहड़ी सचु सचि मिलंदा ॥

(भाई गुरदास जी, वार २७:११)

भाई गुरदास जी के तो सारे वचन ही अनमोल हैं। उपरोक्त वार में वे बड़े ही सारगर्भित ढंग से सच्चे गुरसिक्ख की जीवन-शैली को आकार देते दिखाई देते हैं। भाई गुरदास जी यह भी बता रहे हैं कि कहां नहीं भटकना है और साथ ही कारण भी बता रहे हैं कि उस ओर क्यों नहीं जाना है। संसार में जो कुछ होता दिखाई दे रहा है वह भले ही दूर से मनमोहक है किंतु गुरसिक्ख उससे दूर रहता है। भोग-विलास उसे लुभाते नहीं हैं, क्योंकि वह जान लेता है कि ये सब दुखों के ही कारण हैं, इसीलिए वो उनसे दूर रहता है। दूर से आकर्षक दिखने पर भी वह उन्हें कूड़े के समान ही समझता है। संसार में लुभाने वाले तरह-तरह के स्वाद हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए लोग नाना प्रकार के दुष्कर्म करते हैं, किंतु गुरसिक्ख उनमें नहीं उलझता और उन्हें विष के समान समझ कर उनसे दूर रहता है। बहुत-सी बातें सुनने में कानों को प्रिय लगती हैं किंतु गुरसिक्ख उन पर ध्यान नहीं लगाता तथा कोई सुख नहीं

*E-१७१६, राजाजीपुरम, लखनऊ-२२६०१७, मो. : ९४१५९६०५३३

अनुभव करता। संसार नाना प्रकार के अनावश्यक सांसारिक कार्य-व्यवहार में लगा हुआ है लेकिन गुरसिक्ख उन्हें नहीं अपनाता क्योंकि वो जानता है कि इनसे कोई शुभ फल नहीं प्राप्त होने वाला है। बहुत-से मार्ग हैं जिन पर चलकर लोग अलग-अलग ढंग से जीवन व्यतीत कर रहे हैं किंतु गुरसिक्ख जानता है कि इन मार्गों पर कोई न कोई विकार उसे ठगने के लिए तैयार बैठा है। एक गुरसिक्ख का विलास परमात्मा का प्रेम-मात्र ही है। उसे परमात्मा की महिमा में ही रस की प्राप्ति होती है और परमात्मा का यशोगान ही उसके कानों को प्रिय लगता है। परमात्मा से प्रेम ही उसका एकमात्र और प्रिय व्यवहार है। जो पथ उसे परमात्मा से जोड़ता है वही उसका पथ है। गुरसिक्ख विश्वास करता है कि इस पथ पर चल कर ही उसे जीवन का सच प्राप्त होगा। एक गुरसिक्ख जब परमात्मा से जुड़ता है तो उस सम्बंध में बस, परमात्मा का प्रेम ही होता है। इस प्रेम में कोई पाखंड नहीं, आडंबर नहीं, कोई क्रिया नहीं, बस, भाव है :

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु ॥
उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु ॥१॥
लोका मत को फकड़ि पाइ ॥
लख मड़िआ करि एकठे एक रती ले भाहि ॥१॥रहाउ॥
पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु ॥
ऐथै ओथै आगै पाछै एहु मेरा आधारु ॥२॥
गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राउ ॥
सचा नावणु तां थीऐ जां अहिनिसि लागै भाउ ॥३॥
(पन्ना ३५८)

संसार में सभी तरह के लोग अपने को धार्मिक कहते हैं और अपने धर्म, प्रभु के प्रति आस्था का प्रदर्शन भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं। कोई भी नहीं कहता कि उसे परमात्मा से प्रेम नहीं है। कितने ही तीर्थ-स्थान हैं और हर तीर्थ-स्थान लोगों से भरा रहता है। कितनी ही धर्म-कर्म की विधियां हैं, पंक्तियां है, किंतु एक गुरसिक्ख इन सबसे विरत रहता है। उसे परमात्मा के लिए दीये जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि परमात्मा के नाम का दीया तो उसने अपने दिल में जला रखा है, जिसमें उन सारे विकारों का तेल बनाकर डाल दिया है जो दुखों का कारण बनते हैं। ऐसे जलते हुए दीये के प्रकाश से उसका अंतर आलोकित हो रहा है और सारे भय-संशय समाप्त हो गये हैं। परमात्मा के प्रेम में लीन रहना ही उसकी उपासना की पद्धति है और यही उसके समग्र जीवन का एकमात्र आधार है। परमात्मा के प्रेम-रस में भीगना ही उसके लिए सच्चा तीर्थ-स्नान है।

मनुष्य में कतिपय विशेषताएं होती हैं किंतु कोई न कोई अवगुण उसकी इन विशेषताओं को नष्ट कर देता है, जिससे वे गुण व्यर्थ हो जाते हैं :

प्रथमे तेरी नीकी जाति ॥
दुतीआ तेरी मनीऐ पांति ॥
त्रितीआ तेरा सुंदर थानु ॥
बिगड़ रूपु मन महि अभिमानु ॥१॥
सोहनी सरूपि सुजाणि बिचखनि ॥
अति गरबै मोहि फाकी तूं ॥१॥रहाउ॥
अति सूची तेरी पाकसाल ॥
करि इसनानु पूजा तिलकु लाल ॥
गली गरबहि मुखि गोवहि गिआन ॥
सभ बिधि खोई लोभि सुआन ॥२॥
कापर पहिरहि भोगहि भोग ॥
आचार करहि सोभा महि लोभ ॥
चोआ चंदन सुगंध बिसथार ॥
संगी खोटा क्रोधु चंडाल ॥३॥
अवर जोनि तेरी पनिहारी ॥

इसु धरती महि तेरी सिकदारी ॥
सुइना रूपा तुझ पहि दाम ॥
सीलु बिगारिओ तेरा काम ॥४॥ (पन्ना ३७४)

विस्तारपूर्वक उपरोक्त वचन में गुरसिक्ख को सचेत किया गया है। मनुष्य की ऊंची जाति हो, वंश हो; समाज में अच्छा स्थान हो, किंतु यदि मन में अभिमान है तो यह कभी न कभी उसकी इस उच्चता को भ्रष्ट कर देता है। अहंकार में फंस कर उसे कुरूपता ही दिखती है। मनुष्य उत्तम भोजन करता है, धार्मिक वंश धारण करके ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें करता है, किंतु प्रतिष्ठा पाने का लोभ उसे नीचे गिरा देता है। मनुष्य सुंदर कपड़े पहनता है, लोगों को लुभाने वाले कर्म करता है, जिससे उसकी प्रसिद्धि फैलती है, किंतु उसमें बसने वाला क्रोध सारा खेल बिगाड़ देता है। किसी मनुष्य के पास अथाह सम्पत्ति और शक्ति होती है, सारी वस्तुएं उसे उपलब्ध होती हैं, किंतु उसका असंयम उसके अपमान का कारण बन जाता है। ऐसे अनेक दृष्टांत हैं जो आदि काल से अब तक देखने-सुनने में आते रहते हैं कि मनुष्य का एक अवगुण उसके शेष सारे गुणों को स्वाह कर देता है। गुरबाणी परमात्मा के प्रेम के दीपक में सारे अवगुणों का तेल बनाकर डालने और जला देने की बात करती है, ताकि प्रकाश हो सके। यदि एक भी विकार, एक भी अवगुण, एक भी संशय हमारे साथ चल रहा है तो परमात्मा से प्रेम का सम्बंध नहीं जुड़ पायेगा और सारे प्रयास व्यर्थ हो जायेंगे। सारे विकारों को मारना गुरसिक्खी है:

मुइआ जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिआ मरु मारि ॥
अनहद सबदि सुहावणे पाईऐ गुर वीचारि ॥
(पन्ना २१)

जब किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तब निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि कोई भी विकार नहीं है। गुरसिक्ख वो है जो जीते-जी यह स्थिति पैदा कर सके, निश्चित रूप से जीते-जी समस्त विकारों को मृत कर सके। यह बारीकी है गुरसिक्खी की; यही तीक्ष्णता है उस मार्ग की जिस पर गुरसिक्ख चलता है। जिस तन से विकारों का नाश हो जाता है वह तन कंचन के समान हो जाता है :

काइआ कंचनु सबदे राती साचै नाइ पिआरी ॥१८॥
काइआ अंम्रिति रही भरपूरे पाईऐ सबदि वीचारी ॥१९॥
जो प्रभु खोजहि सेई पावहि होरि फूटि मूए अहंकारी ॥२०॥ (पन्ना ९११)

विकारों से मुक्त गुरसिक्ख का तन सोने की तरह सुशोभित हो उठता है क्योंकि विकारों से खाली हुए उस शरीर में परमात्मा के प्रेम का अमृत पूरे का पूरा भर उठता है। गुरसिक्ख, क्योंकि परमात्मा को पाने का उद्यम करता है, इसलिये परमात्मा को पा लेता है। बाकी लोग तो वाद-विवाद और तर्क-वितर्क में ही उलझे रह कर अपने अहंकार की आग में उपरोक्त वचन में *"जो प्रभु खोजहि सेई पावहि"* पर एक गुरसिक्ख को बार-बार विचार करना चाहिए। यह विचार उसे निरंतर परमात्मा के मार्ग पर चलने और स्वयं विचारों से मुक्त करने के लिए तब तक प्रेरित करता रहता है जब तक कि अंतर में प्रेम का दीप न जलने लगे और सच्चे प्रेम का सम्बंध न जुड़ जाये। इसके लिये साधसंगत भी सहायक है :

होइ इकत्र मिलहु मेरे भाई दुबिधा दूरि करहु लिव लाइ ॥
हरि नामै के होवहु जोड़ी गुरमुखि बैसहु सफा विछाइ ॥१॥
इन्ह बिधि पासा ढालहु बीर ॥

गुरमुखि नामु जपहु दिनु राती अंत कालि नह लागै पीर ॥१॥रहाउ॥
करम धरम तुम्ह चउपड़ि साजहु सतु करहु तुम्ह सारी ॥
कामु क्रोधु लोभु मोहु जीतहु ऐसी खेल हरि पिआरी ॥२॥ (पन्ना ११८५)

उपरोक्त वचन में *'इकत्र मिलहु'* को साधसंगत के रूप में भी देखा जा सकता है और मनुष्य की पूर्ण एकाग्रता के रूप में भी। सामान्य रूप से मनुष्य का ध्यान भटकता रहता है। एक ही समय में उसे कई चिंताएं ग्रसित किये रहती हैं और एक साथ कई विचार उसके मन में चल रहे होते हैं। गुरसिक्ख अपनी चेतना को सारी दुविधाएं दूर करके एक बिंदु पर केंद्रित करे, जो परमात्मा है; सभी से तोड़ कर उससे ही जोड़े। जिस तरह चौपड़ खेलने वाले आमने-सामने बैठते हैं उसी तरह वह परमात्मा से प्रेम का सम्बंध जोड़ने के लिये इस तरह परमात्मा को प्रत्यक्ष समझे कि बीच में बस, प्रेम हो। गुरसिक्ख परमात्मा और उसकी कृपा को अपनी चेतना में पूरी तरह से बसा ले और सारे विकारों को जीत ले। ऐसी विजय परमात्मा को भी प्रिय है। जिसने अपने विकारों को जीत लिया वह परमात्मा को प्रिय हो गया एक परमात्मा ही तो है जिससे प्रीति की जा सके। ऐसी प्रीति से सुख उपजता है :

जिनी इक मनि नामु धिआइआ गुरमती वीचारि ॥
तिन के मुख सद उजले तितु सचै दरबारि ॥
ओइ अंम्रितु पीवहि सदा सदा सचै नामि पिआरि ॥ (पन्ना २८)

उसी गुरसिक्ख की शोभा है जिसने एकाग्रता से स्वयं को परमात्मा के साथ जोड़ लिया है।

संसार की दशा विचित्र है। मनुष्य अपने तन की आवश्यकताओं के पीछे पूरा जीवन भाग-दौड़ करता रहता है, फिर भी उसकी कामनाएं तृप्त नहीं हो पाती। इससे वह अपना परलोक भी गंवा बैठता है, जबकि गुरसिक्ख इस दौड़ में नहीं पड़ता और सहज रहकर पूर्ण चित्त परमात्मा में लगाकर संतोष प्राप्त करता है :

छादनु भोजनु मागतु भागै ॥
खुधिआ दुसट जलै दुखु आगै ॥
गुरमति नही लीनी दुरमति पति खोई ॥
गुरमति भगति पावै जनु कोई ॥१॥
जोगी जुगति सहज घरि वासै ॥
एक द्रिसटि एको करि देखिआ भीखिआ भाइ सबदि त्रिपतासै ॥ (पन्ना ८७९)

ऊपर जिस सहजता की बात की गई है वह उसी को प्राप्त होती है जो समस्त विकारों से मुक्त होकर एक परमात्मा को ही मन में बसाता है, जिसने विकारों की मृत्यु को सुनिश्चित कर लिया है।

जिस परमात्मा से मिलना, उसके साथ प्रेम की डोर को जोड़ना एक कठिन कार्य लगता है, गुरबाणी उसे उसी परमात्मा की कृपा से सहज बनाने की राह दिखाती है :

गुर का सबदु रिदे महि चीना ॥
सगल मनोरथ पूरन आसीना ॥१॥
संत जना का मुखु ऊजलु कीना ॥
करि किरपा अपुना नामु दीना ॥१॥रहाउ॥
अंध कूप ते करु गहि लीना ॥
जै जै कारु जगति प्रगटीना ॥२॥ (पन्ना ८०४)

जब गुरसिक्ख परमात्मा को खोजने का उद्यम करता है तो परमात्मा स्वयं उसे विकारों के अंधे कुएं में से बाहर निकाल लेता है और उसकी इच्छा पूर्ण करते हुए अपने प्रेम से उसे सराबोर कर देता है।



ख़बरनामा

सिक्ख धर्म तथा सिक्ख इतिहास विषय पर सेमीनार

चंडीगढ़ : २४ अप्रैल : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी की धर्म प्रचार कमेटी द्वारा संचालित 'सिक्ख स्रोत ऐतिहासिक ग्रंथ संपादना प्रोजेक्ट' द्वारा शोधकर्ताओं के नेतृत्व एवं शिक्षा के लिए 'सिक्ख धर्म तथा सिक्ख इतिहास : पश्चिमी नज़र से' विषय पर सेमीनार करवाया गया।

सेमीनार में उपस्थित श्रोताओं का स्वागत करते हुए डॉ. किरपाल सिंघ ने कहा कि अंग्रेज लेखकों ने भारतीय धर्मों को वहमों का पुलिंदा बताया है। जब अंग्रजों का आरंभ में पंजाब के साथ संपर्क जुड़ा तो उस समय उन्हें यहां की भाषा, संस्कृति, सभ्याचार का ज्ञान न होने के कारण वे सिक्ख धर्म, श्री गुरु ग्रंथ साहिब की सर्वोच्चता, आध्यात्मिकता को नहीं समझ सके। इसी कारण वे सिक्ख धर्म व का बढ़िया विश्लेषण नहीं कर सके।

सेमीनार के मुख्य वक्ता इतिहासकार डॉ. नाज़र सिंघ ने कहा कि इतिहास में भाषा की मुख्य भूमिका है। उन्होंने बताया कि डॉ. ट्रंप के विश्लेषण के बाद ही पुरातन जनम साखी की महत्ता का ज्ञान हुआ। डॉ. दलबीर सिंघ ने विदेशी लेखकों द्वारा भारतीय धर्मों का अध्ययन करने के बारे तीन मॉडलों-- सुचेत, अचेत व अकादमिक पक्ष पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि विदेशी इतिहासकारों को अपने धर्म से ऊपर उठ कर इतिहास लिखना चाहिए; धर्म का समय, स्थान एवं मानसिकता से बाहर निकल कर अध्ययन करना चाहिए।

मुख्य मेहमान डॉ. कुलविंदर सिंघ ने कहा कि विदेशी लेखकों की कृतियों में से अंग्रेजों का व्यापार, साम्राज्यवाद झलकता होने के कारण वे भारतीय धर्मों के साथ इंसाफ नहीं कर सके। उन्होंने डॉ. मैलकम की भूमिका पर प्रकाश डाला। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सिक्ख इतिहास रीसर्च बोर्ड के निदेशक स. रूप सिंघ ने कहा कि सिक्ख इतिहास को सिक्खी सोच के अनुसार लिखना चाहिए। श्री अकाल तख़्त साहिब के भूतपूर्व जत्थेदार ज्ञानी जोगिंदर सिंघ ने कहा कि सिक्ख इतिहास में आई सभी बातों को गुरमति की कसौटी के आधार पर शामिल करना चाहिए। सेमीनार के दौरान मंच-संचालन रीसर्च स्कालर स. चमकौर सिंघ ने बाखूबी निभाया। सेमीनार के अंत में स. सुखमिंदर सिंघ गज्जणवाला ने आए हुए सभी मेहमानों/श्रोताओं का धन्यवाद किया।

कैंसर पीड़ितों की मदद हेतु दानी सज्जनों को आगे आने के लिए अपील

श्री अमृतसर : २७ अप्रैल : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष जत्थेदार अवतार सिंघ ने कहा कि इस समय कैंसर नामक भयानक बीमारी बहुत बड़े पैमाने पर फैल चुकी है और इसके इलाज पर बहुत ज्यादा खर्च आता है। उन्होंने कहा कि गरीब लोगों के लिए पैसे की कमी के कारण इस बीमारी का इलाज करवाना बहुत मुश्किल हो जाता है। पैसे की कमी के कारण समय पर इलाज न होने के कारण कई कीमती जानें इस बीमारी की भेंट चढ़ चुकी हैं।

उन्होंने कहा कि कैंसर की नामुराद बीमारी के इलाज को ध्यान में रखते हुए गरीब लोगों की मदद करने के लिए शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा 'कैंसर रिलीफ़ फंड' स्थापित किया गया है, जिसमें कुछ दानी सज्जनों के अलावा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के सदस्य साहिबान तथा कर्मचारियों ने भी बढ़-चढ़ कर योगदान दिया है। इस बीमारी से पीड़ित लोगों की शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा यथासंभव आर्थिक मदद भी की जा रही है। उन्होंने कहा कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा कैंसर पीड़ित मरीजों को ५० लाख की सहायता दी गई है। शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी द्वारा इस सम्बंधी बैंक में खाता नं. **0018000100032423 IFSC Code PUNBINBBMRD** खोला गया है, जिसमें संगत कैंसर पीड़ित मरीजों की सहायता के लिए पैसे जमा करवा सकती है। उन्होंने दानी सज्जनों को पुरज़ोर अपील की है कि वे अपनी कमाई में से उपरोक्त खाते में ज्यादा से ज्यादा रकम जमा करवाकर कैंसर पीड़ित मरीजों की सहायता करे। इसके अलावा दानी सज्जनों द्वारा 'सचिव, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी' के नाम पर दान-राशि चैक/ड्रफ़्ट तैयार करवाकर डॉक द्वारा 'सचिव, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, तेजा सिंघ समुंदरी हाल, श्री अमृतसर' के पते पर भी भेजे जा सकते हैं।

श्री गुरु रामदास अस्पताल, वल्ला में
चार नये आप्रेशन थियेटरों का उद्घाटन

श्री अमृतसर : २ मई : शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष जत्थेदार अवतार सिंघ ने श्री गुरु रामदास अस्पताल, वल्ला (श्री अमृतसर) में चार नये आप्रेशन थियेटरों का उद्घाटन किया। श्री गुरु रामदास अस्पताल, वल्ला में मरीजों की बढ़ रही संख्या के कारण आ रही मुश्किल को दूर करने के लिए ट्रस्ट द्वारा चार नये आप्रेशन थियेटर बनाने का फैसला किया गया था। अस्पताल में मरीजों को बेहतर सुविधाएं प्रदान करने तथा हर मरीज का समय पर इलाज करने के लिए इससे पहले १० आप्रेशन थियेटर चल रहे हैं।

जिक्रयोग्य है कि श्री गुरु रामदास अस्पताल, वल्ला में कम दरों पर मरीजों के टेस्ट आदि किए जा रहे हैं तथा इस अस्पताल में लगभग हर बीमारी के इलाज के लिए माहिर डॉक्टर उपलब्ध हैं और वे मरीजों की उचित देखभाल कर रहे हैं।

उद्घाटन के अवसर पर शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के कार्यकारिणी सदस्य स. रजिंदर सिंघ महिता, ट्रस्ट के सचिव स. जोगिंदर सिंघ, अपर सचिव डॉ. ए. पी. सिंघ, उप सचिव स. बलविंदर सिंघ जौड़ासिंघा, डायरेक्टर-प्रिंसीपल डॉ. गीता शर्मा, आप्रेशन थियेटर की प्रभारी डॉ. रुचि गुप्ता तथा डॉ. बलजीत सिंघ के अलावा आप्रेशन थियेटर से सम्बंधित समूह स्टाफ मौजूद था।

प्रिंटर व पब्लिशर स. दलमेघ सिंघ ने गोल्डन आफसेट प्रेस, गुरुद्वारा रामसर साहिब, श्री अमृतसर से छपवा कर मालिक शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के लिए कार्यालय, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, श्री अमृतसर से प्रकाशित किया। प्रकाशित करने की तिथि : ०१-०६-२०१२